सन् 1987 से निरंतर प्रकाशित

पर्यावरण डाइजेस्ट

पर्यावरण पर पहली राष्ट्रीय हिन्दी मासिक

ISSN 2229-7529

वर्ष 39, अंक 9

सितम्बर 2025

465

आवारा कुत्ते : समस्या और समाधान

इन्वेस्ट मध्यप्रदेश
अनंत संभावनाएं

उद्योग एवं रोज़गार वर्ष 2025

डॉ. मोहन यादव, मुख्यमंत्री

नरेन्द्र मोदी, प्रधानमंत्री

व्यापक निवेश अवसर

सूर्य मित्र कृषि फीडर योजना

योजना के प्रमुख उद्देश्य

- मध्यप्रदेश पावर मैनेजमेंट कंपनी को कम मूल्य पर बिजली की उपलब्धता सुनिश्चित कराना
- ट्रांसमिशन हानि कम करना एवं सीधे खपत स्थल पर बिजली पहुंचाना
- 33/11 केवी उपकेंद्रों पर ओवरलोडिंग, लो-वोल्टेज और पावर कट की समस्या कम करना
- किसान को सिंचाई के लिये दिन में बिजली उपलब्ध कराना

नवीकरणीय ऊर्जा का विस्तार

- सब-स्टेशन की 100% क्षमता तक की परियोजनाओं की स्थापना
- परियोजनाओं को पीएम कुसुम-सी योजनांतर्गत उपलब्ध केंद्रीय अनुदान का लाभ लेने का विकल्प
- 1900 से अधिक विद्युत सबस्टेशन एवं 14500 मेगावॉट क्षमता सौर परियोजनाओं के चयन हेतु उपलब्ध
- पीएम कुसुम योजना में 3.45 लाख पम्प का लक्ष्य
- वोकल फॉर लोकल - स्थानीय उद्यमियों के लिए निवेश एवं रोज़गार सृजन का उचित अवसर
- वित्त पोषण की सुगमता के लिए बैंकों से समन्वय
- परियोजनाओं में AIF के तहत 7 वर्षों तक 3% ब्याज में छूट
- Reactive Power प्रबंधन से अतिरिक्त आय

D-19183/25

ISSN 2229-7529

पर्यावरण पर पहली राष्ट्रीय हिन्दी मासिक

पर्यावरण डाइजेस्ट

प्रकाशन का 39 वां वर्ष

ईमेल - paryavaran.digest@gmail.com,kspurohitrtm@gmail.com

समन्वय प्रकाशन

19 पत्रकार कॉलोनी, रतलाम 457001 ☎: (07412) 403640

1.	आवारा कुत्ते : समस्या और समाधान	डॉ.खुशालसिंह पुरोहित	5
2.	क्या विकास की उपज है भूकंप?	डॉ. ओ. पी. जोशी	9
3.	भरपेट संतुलित भोजन टीके से कम नहीं	डॉ. अनुराग भार्गव	12
4.	खतरनाक है प्रकृति से खिलवाड़	प्रमोद भार्गव	18
5.	रेत खनन और पर्यावरण संकट	राजकुमार सिन्हा	22
6.	पर्यावरण परिक्रमा	संकलित	26
7.	पर्यावरण को समृद्ध करता जैव ईंधन	योगेश कुमार गोयल	30
8.	ज्ञान विज्ञान	संकलित	34
9.	दिन बादलों में खो गया (कविता)	त्रिलोचन	38
10.	बदलते समय मैं हिंदी की अविचलता	विभा कनन	39
11.	जरुरी है उर्जा के हरित विकल्प	डॉ. रामानुज पाठक	42
12.	पर्यावरण समाचार	संकलित	47

सम्पादक : डॉ. खुशालसिंह पुरोहित

संयुक्त संपादक : कुमार सिद्धार्थ, श्रीमती अलका पुरोहित

* पर्यावरण डाइजेस्ट एक अव्यवसायिक प्रकाशन * सभी पद मानसेवी

वर्ष 39, अंक 9

सितम्बर 2025

सहयोग : सप्रेस, स्त्रोत वार्षिक सदस्यता शुल्क रु. 200

संस्थागत रु. 400

यह अंक रु. 15 दसवर्षीय सदस्यता व्यक्तिगत रु. 1750, संस्थागत रु. 3500

सदस्यता शुल्क राशि बैंक डाफ्ट/धनादेश द्वारा पर्यावरण डाइजेस्ट के नाम भेजें या बैंक ऑफ बड़ौदा, स्टेशन रोड़, रतलाम के खाता क्रमांक 05040200000504 में जमा कर सकते है इसका IFSC CODE - BARB0RATLAM है।

स्वत्वाधिकारी डॉ. खुशालसिंह पुरोहित द्वारा 19 पत्रकार कॉलोनी, रतलाम से प्रकाशित एवं स्टेण्डर्ड स्टेशनरी मार्ट, 78 रानीपुरा, इन्दौर से मुद्रित।

डी.टी.पी. कार्य : विनिशा क्रियेशन, रतलाम

धार्मिक अनुष्ठानों में प्रयुक्त औषधीय पौधों का अध्ययन

वैदिक काल से ही यह ज्ञात है कि पूजा–हवन और अनुष्ठानों में प्रयोग होने वाली सामग्रियां औषधीय गुण भी रखती हैं। इन पर वैज्ञानिक दृष्टिकोण से प्रकाश डालने के लिए केंद्रीय आयुर्वेदिक विज्ञान अनुसंधान परिषद द्वारा देशभर में विज्ञानियों की देखरेख में एक अध्ययन शुरू किया गया है ताकि यह जाना जा सके कि किस तरह ये स्वास्थ्य के लिए भी हितकारी हैं।

भारत सरकार के आयुष मंत्रालय के अधीन केंद्रीय आयुर्वेदिक विज्ञान अनुसंधान परिषद (सीसीआरएएस) द्वारा शुरू अध्ययन का उद्देश्य यह जानना भी है कि पूजन, हवन और धार्मिक अनुष्ठानों में प्रयुक्त होने वाली सामग्रियों में कौन–कौन से औषधीय, जैविक और पर्यावरणीय गुण छिपे हैं।

इस परंपरागत ज्ञान को संरक्षित करने के साथ पीढ़ी दर पीढ़ी इसको बढ़ावा दिलाने का भी प्रयास है। यह अध्ययन मार्च 2026 तक चलेगा। एक वर्ष की अवधि में इसे पूरा करने का लक्ष्य रखा गया है। इस अवधि में सीसीआरएएस की टीमें देश के विभिन्न भौगोलिक और सांस्कृतिक क्षेत्रों में जाकर डेटा एकत्र करेंगी और फिर उसका विश्लेषण कर रिपोर्ट तैयार की जाएगी। देश में आज भी कई मौखिक ज्ञान परंपराएं हैं जो कि लिखित रूप में दर्ज नहीं हैं। यह अध्ययन उन रीति–रिवाजों, सामग्रियों और प्रयोगों का दस्तावेजीकरण करेगा। इससे यह ज्ञान न केवल अगली पीढ़ियों तक पहुंचेगा, बल्कि इसे वैश्विक मंच पर भी प्रस्तुत किया जा सकेगा।

हवन का न केवल आध्यात्मिक महत्व है, बल्कि इसे वैज्ञानिक दृष्टिकोण से भी बहुत ही महत्वपूर्ण माना जाता है। शोधकर्ताओं ने पाया है कि हवन में प्रयोग होने वाले घी या गुड़ के जलने से आक्सीजन का निर्माण होता है। हवन का धुंआ वायुमंडल को शुद्ध बनाता है, जिससे करीब 94 प्रतिशत हानिकारक जीवाणु नष्ट हो जाते हैं। हवन में आम की लकड़ी से फार्मिक एल्डिहाइड नामक गैस उत्पन्न होती है, जिससे खतरनाक जीवाणु वातावरण से नष्ट हो जाते हैं। यह भी पाया गया है कि हवन से निकलने वाला धुआं बाहर निकल जाने पर भी 24 घंटे तक वातावरण में शुद्धता बनी रहती है।

तुषार पुरोहित, रतलाम (म.प्र.)

अपनी बात

डॉ. खुशालसिंह पुरोहित

देश में बढ़ रही वरिष्ठ नागरिकों की आबादी

नमूना पंजीकरण प्रणाली (एसआरएस) की 2023 की रिपोर्ट में दावा किया गया है कि भारत की आबादी तेजी से बूढ़ी हो रही है। रिपोर्ट के मुताबिक देश में प्रजनन दर घट रही है और शून्य से 14 वर्ष आयु वर्ग की आबादी में तेज गिरावट दर्ज की गई है। रिपोर्ट के मुताबिक 0 से 14 वर्ष आयु वर्ग की आबादी का हिस्सा 1971 से 1981 के दौरान 41.2 प्रतिशत के घटकर 38.1 प्रतिशत रह गया। वहीं 1991 से 2023 के दौरान ये आबादी 36.3 प्रतिशत से घटकर 24.2 प्रतिशत रह गई।

देश में कुल प्रजनन दर में आई गिरावट को इसके लिए जिम्मेदार बताया गया है, जो 1971 के 5.2 से घटकर 2023 में 1.9 रह गई। एसआरएस के मुताबिक 88 लाख लोगों का सर्वेक्षण करके ये रिपोर्ट तैयार की गई है। इसमें जनसांख्यिकी, प्रजनन और मृत्युदर जैसे संकेतकों के आधार पर डाटा तैयार किया है। रिपोर्ट के मुताबिक सभी राज्यों और केंद्र शासित प्रदेशों से मिले आंकड़े ये संकेत देते हैं कि 0 से 14 साल की आयु वर्ग में लड़कों की संख्या लड़कियों से ज्यादा है। केवल दिल्ली के ग्रामीण इलाकों में लड़कियों की संख्या लड़कों से ज्यादा पाई गई है।

रिपोर्ट में 15 से 59 साल आयु वर्ग की आबादी 1971-1981 के दौरान 53.4 से बढ़कर 56.3 प्रतिशत हो गई। वहीं 1991 से 2023 के बीच ये आंकड़ा 57.7 से बढ़कर 66.1 प्रतिशत हो गया। इस आबादी को कामकाजी आयु वर्ग भी कहा जाता है और दिल्ली में ये आबादी सबसे ज्यादा 70.8 प्रतिशत पाई गई, जबकि तेलंगाना में 70.2 और आंध्र प्रदेश 70.1 प्रतिशत के साथ दूसरे और तीसरे स्थान पर क्रमशः हैं। बिहार में इस आयु वर्ग की आबादी सबसे कम 60.1 प्रतिशत, राजस्थान में 63.4 प्रतिशत, उत्तराखंड और मध्यप्रदेश में 63.9 प्रतिशत आंकी गई है।

जम्मू-कश्मीर में 70.1 प्रतिशत ग्रामीण महिलाएं कामकाजी आयु वर्ग में हैं। वहीं शहरी इलाकों में सबसे ज्यादा कामकाजी महिलाएं असम में 72.4 प्रतिशत हैं।

दिल्ली में ग्रामीण कामकाजी पुरुषों की संख्या 72.9 प्रतिशत रही, जबकि असम में शहरी कामकाजी पुरुषों की संख्या 70.9 प्रतिशत रही। देश में 60 साल से ऊपर के वरिष्ठ नागरिकों की आबादी भी बढ़ रही है। 2023 में ये आबादी 9.7 प्रतिशत की दर से बढ़ी है।

इस मामले में केरल 15.1 प्रतिशत सीनियर सिटीजन के साथ नंबर एक पर है। वहीं तमिलनाडु में 14 प्रतिशत और हिमाचल में 60 साल से ऊपर के 13.2 प्रतिशत लोग रह रहे हैं। शिशु मृत्यु दर में गिरावट, जन्म दर भी गिरी : देश में शिशु मृत्युदर (आइएमआर) और शिशु जन्म दर में उल्लेखनीय गिरावट दर्ज की गई है। 2023 की नमूना पंजीकरण प्रणाली (एसआरएस) रिपोर्ट के मुताबिक देश में शिशु मृत्यु दर न्यूनतम 25 पर आ गई है। 2013 में 40 के मुकाबले इसमें 37.5 प्रतिशत की गिरावट दर्ज की गई है। वहीं शिशु जन्म दर में पिछले 10 साल में 14 प्रतिशत की भारी गिरावट दर्ज की गई है।

वर्ष 2013 में ये दर 21.4 प्रतिशत थी, अभी ये 18.4 प्रतिशत है। रिपोर्ट में शिशु जन्म दर में भी गिरावट का रुख दर्ज किया गया है। पिछले 10 वर्ष में जन्म दर 21.4 प्रतिशत से गिरकर 2023 में 18.4 प्रतिशत पर आ गई है, जिसमें 14 प्रतिशत की गिरावट दर्ज की गई है।

वृद्धों की लगातार बढ़ रही संख्या की वजह से आज सरकार को हर जिले में वृद्धाश्रम खोलने की ज़रूरत महसूस हो रही है। यहां यह बात सोचने पर मज़बूर करती है कि क्या हमारे माता–पिता की ज़िम्मेदारी सरकार की है; हमारा उनके प्रति कोई उत्तरदायित्व नहीं है । क्यों आधुनिकता की अंधी दौड़ में भागते हुए हम अपने कर्तव्यों व संस्कारों को भूलते जा रहे हैं? जब उन्होंने कभी हमें अकेला नहीं छोड़ा तो हम इतने स्वार्थी कैसे हो जाते हैं कि बिना कुछ सोचे– विचारे नि:सहाय अवस्था में उन्हें छोड़कर चले जाते हैं। जबकि हम सब को पता है कि वृद्धावस्था में बुजुर्गों को कई प्रकार की शारीरिक, मानसिक, सामाजिक व आर्थिक समस्याओं का सामना करना पड़ता है। यहाँ इस बात पर भी गौर करना ज़रूरी है कि उन बुजुर्गों के साथ दुर्व्यवहार अधिक होता है, जो आर्थिक रूप से अपनी संतानों पर निर्भर होते हैं।

अधिकतर मामलों में देखा गया है कि कई बुजुर्ग भावुक होकर अपने जीते जी अपनी वसीयत संतानों के नाम पर कर देते हैं; वहीं कई बार बेटे व बेटियाँ ज़बरदस्ती अपने माँ–बाप की संपत्ति को अपने नाम करवा लेते हैं, और फिर माँ–बाप को घर से निकाल देते हैं या खाने के लिये भी मोहताज़ कर देते हैं। ऐसे में प्रत्येक बुजुर्ग को आर्थिक रूप से मज़बूत रहना अत्यंत आवश्यक है। ***

आवारा कुत्ते : समस्या और समाधान

डॉ.खुशालसिंह पुरोहित

पिछले दिनों सर्वोच्च न्यायालय ने एक आदेश में दिल्ली–एनसीआर क्षेत्र से सभी आवारा कुत्तों को हटाकर स्थायी शेल्टरों में रखने का निर्देश दिया। न्यायालय ने कहा कि कोई भी कुत्ता वापस उसी इलाके में नहीं छोड़ा जाएगा। इस आदेश ने देशभर में एक नई बहस को जन्म दिया है। न्यायालय का तर्क है कि कुत्तों के काटने और रेबीज जैसी जानलेवा बीमारियों को खत्म करने के लिए यह कदम उठाना आवश्यक है।

हमें देखना होगा कि वास्तव में व्यावहारिक और मानवीय समाधान क्या हो सकते है? भारत में पहले से ही कानून और दिशानिर्देश मौजूद हैं। अइउ नियम 7(3) कहता है कि नसबंदी और टीकाकरण के बाद कुत्तों को उसी इलाके में छोड़ा जाए। ऐसा इसलिए है क्योंकि कुत्ते अपने इलाके को पहचानते हैं और नए क्षेत्रों में जाकर असहज होकर आक्रामक हो सकते हैं। लेकिन सर्वोच्च न्यायालय का आदेश इस मूल सिद्धांत के विपरीत है।

कहा जाता है कि कुत्तों की संख्या की दृष्टि से विश्व के दस प्रमुख देशों में भारत का स्थान चौथा है, अनुमान है कि देश में 1.53 करोड़ आवारा कुत्ते सड़कों पर घूमते रहते है, इनके भोजन, रहवास और स्वास्थय सुविधाओं के लिए मोहल्ला स्तर से लेकर राष्ट्रीय स्तर तक सरकार, स्वयंसेवी संगठन और समाज की भागीदारी से ठोस और स्थायी प्रबंधन नीति बनाने की आवश्यकता है।

भारत में आवारा कुत्तों की समस्या आज एक ऐसा मुद्दा बन चुकी है, जिस पर अदालतें, सरकारें, समुदाय और सामाजिक कार्यकर्ता लगातार चर्चा कर रहे हैं। यह केवल एक प्रशासनिक या पशु कल्याण का विषय नहीं है, बल्कि

सार्वजनिक स्वास्थ्य, सुरक्षा और समाज की मानसिकता से जुड़ा एक बहुआयामी संकट है। विश्व स्वास्थ्य संगठन की रिपोर्ट बताती है कि दुनिया भर में कुत्तों के काटने से होने वाली बीमारी रेबीज से जितनी मौतें होती हैं, उनमें से 36 प्रतिशत मौतें भारत में होती हैं। यह संख्या हर साल लगभग 20,000 तक पहुँचती है, जिनमें 30 से 60 प्रतिशत मामले 15 साल से कम उम्र के बच्चों के होते हैं। आँकड़े दर्शाते हैं कि यह गंभीर समस्या केवल पशु अधिकार या जीव दया का मामला नहीं, बल्कि सार्वजनिक स्वास्थ्य सेवाओं के लिए एक नयी चुनौती है।

मनुष्य और कुत्तों का रिश्ता लगभग 12,000 साल पुराना माना जाता है। प्राचीन काल में कुत्ते इंसानों के साथी और रक्षक रहे, वे शिकार में मदद करते थे और खेतों व घरों की रखवाली करते थे। कुत्तों की वफादारी और जीवन का सहअस्तित्व उन्हें इंसान का सबसे करीबी साथी बनाता है। आधुनिक शहरीकरण की समस्याओं ने इस रिश्ते का संतुलन बिगाड़ दिया है। हमारे देश में शहरीकरण की रफ्तार बेहद तेज़ चल रही है। गांव कस्बे शहरों में बदल रहे हैं और शहर महानगरों में परिवर्तित हो रहे है। इस बदलाव के साथ कुत्तों के पारंपरिक आवास खत्म हो रहे हैं। मजबूत दीवारों में सीमाबद्ध कॉलोनियां, ऊंची इमारतें और शोर–प्रदूषण वाले इलाके कुत्तों की दैनिक जीवनचर्या के अनुकूल नहीं हैं। ऐसे में वे भोजन और आश्रय की तलाश में सड़कों और बस्तियों में आते हैं। यहां उन्हें सबसे आसान भोजन कचरे के ढेरों और घरों में मिलता है।

कचरा प्रबंधन की अव्यवस्था इस समस्या का सबसे बड़ा कारण है। भारत के अधिकांश शहरों में कचरे का उचित निपटान नहीं हो रहा है। खुले में पड़ा गीला कचरा, कचरे में खासकर मांसाहारी अवशेष कुत्तों के लिए आकर्षण का प्रमुख कारण है। जब भोजन लगातार उपलब्ध हो, तो कुत्तों की आबादी स्वाभाविक रूप से बढ़ती है। यही कारण है कि महानगरों से लेकर कस्बों तक आवारा कुत्तों की संख्या लगातार बढ़ रही है।

भारत में कुत्तों के प्रति समाज का रवैया भी बहुआयामी है। एक ओर हिंदू संस्कृति में कुत्तों को भगवान भैरव से जोड़ा जाता है। कई लोग धार्मिक भावना से आवारा कुत्तों को खिलाना पुण्यकारी मानते हैं। दूसरी ओर बहुत से लोग कुत्तों को डर और असुरक्षा की दृष्टि से देखते हैं। कुत्तों के झुंड देखकर बच्चे, महिलाएं और बुजुर्ग अक्सर असहज हो जाते हैं। यही कारण है कि समाज इस मुद्दे पर एक राय नहीं बना पाता।

देश में उपलब्ध पशु चिकित्सा

सेवाओं की स्थिति इस संकट को और बढ़ाती है, कुत्तों के लिए नसबंदी और टीकाकरण जैसे उपाय व्यापक स्तर पर लागू नहीं हो पा रहे हैं। ऐसे में उनकी प्रजनन दर पर अंकुश लगाना लगभग असंभव हो जाता है। आंकड़े बताते हैं कि एक मादा कुत्तिया साल में दो बार बच्चों को जन्म दे सकती है और औसतन एक जोड़ी कुत्ते 6–7 साल में सैकड़ों संतानें पैदा कर सकती है। जब तक बड़े पैमाने पर बंध्याकरण नहीं होगा, तब तक यह आबादी लगातार बढ़ती रहेगी।

सर्वोच्च न्यायालय के ताज़ा आदेश को व्यावहारिक दृष्टि से देखे तो लाखों कुत्तों को स्थायी शेल्टरों में रखना न तो संभव है और न ही मानवीय है। दिल्ली में अभी तक एक भी बड़ा डॉग शेल्टर नहीं है। जो शेल्टर और नसबंदी केंद्र मौजूद हैं, वहां पहले ही भीड़, संसाधनों की कमी और दुर्व्यवहार की शिकायतें मिलती रही हैं। ऐसे में अचानक लाखों कुत्तों को पकड़कर वहां रखना वास्तव में उन्हें अकाल मृत्यु की ओर धकेलने जैसा होगा।

अंतरराष्ट्रीय अनुभव बताते हैं कि समाधान मानवीय और वैज्ञानिक दृष्टिकोण में निहित है। नीदरलैंड पहला देश है जिसने मानवीय तरीके से आवारा कुत्तों की समस्या को पूरी तरह खत्म किया है। वहां बड़े पैमाने पर नसबंदी अभियान चलाए गए, पालतू कुत्तों का पंजीकरण अनिवार्य किया गया और कचरा प्रबंधन को सख्ती से लागू किया गया। मैक्सिको निरंतर टीकाकरण और जनजागरूकता से रेबीज मुक्त देश बन गया है।

भूटान में सरकार ने सभी कुत्तों का बंध्याकरण और टीकाकरण सुनिश्चित कर उन्हें सड़कों पर शांतिपूर्वक रहने के लिए छोड़ दिया है। भारत में भी कुछ सफल उदाहरण हैं। जयपुर में सरकारी नीतियों, स्वयंसेवी संस्थाओं के प्रयासों और सामुदायिक भागीदारी से कुत्तों की संख्या और काटने की घटनाओं में उल्लेखनीय कमी आई है। वडोदरा में ह्यूमन सोसाइटी और नगर निगम ने मिलकर नसबंदी दर 36 प्रतिशत से बढ़ाकर 86 प्रतिशत तक पहुंचाई। बेंगलुरु, पुणे और गोवा के कुछ शहर घायल कुत्तों के बचाव और पुनर्वास के लिए जाने जाते हैं। इन उदाहरणों से साफ है कि जब स्थानीय समुदाय, सरकार और स्वयंसेवी संगठन मिलकर काम करते हैं, तब समस्या का स्थायी समाधान संभव हो सकता है।

विशेषज्ञ मानते हैं कि भारत को दो मोर्चों पर काम करना होगा। पहला, आबादी कुत्तों की आबादी पर नियंत्रण। इसके लिए पशु जन्म नियंत्रण (ABC) और एंटी–रेबीज वैक्सीनेशन (ARV) कार्यक्रमों को बड़े पैमाने पर और

ईमानदारी से लागू करना होगा। यह जरूरी है कि नसबंदी और टीकाकरण साथ–साथ हों। दूसरा, उन कारकों पर काम करना होगा जो इस समस्या को जन्म दे रहे हैं – जैसे कि खराब कचरा प्रबंधन, अवैध ब्रीडिंग, गैर–पंजीकृत पालतू जानवर और गैर–जिम्मेदाराना तरीके से कुत्तों को खाना खिलाना।

देश में पालतू कुत्तों का पंजीकरण अनिवार्य होना चाहिए और अवैध ब्रीडिंग पर सख्त कार्रवाई होनी चाहिए। देसी नस्लों को प्रोत्साहित करना भी जरूरी है। यह सोच बदलनी होगी कि केवल विदेशी नस्ल के कुत्ते ही प्रतिष्ठा का प्रतीक हैं। सरकार ने देसी नस्लों को सुरक्षाबलों में जगह देकर यह संदेश दिया है कि वे किसी से कम नहीं है। संस्थाओं और व्यक्तियों द्वारा कुत्तो को गोद लेने की प्रक्रिया को सरल और आकर्षक बनाना होगा ताकि लोग शेल्टर से कुत्ते लाकर पालन के कार्य में आगे आयें।

इस समस्या के समाधान में समुदाय की भागीदारी सबसे अहम है। सर्वोच्च न्यायालय के आदेश में जनता और स्थानीय समुदाय को पूरी तरह शामिल नहीं किया गया है। जबकि अनुभव बताता है कि जब लोग शामिल होते हैं तो योजनाओं की लागत घटती है और परिणाम बेहतर आते हैं। शोधकर्ताओं ने यह दिखाया है कि सामुदायिक भागीदारी से नसबंदी और टीकाकरण कार्यक्रमों की लागत नाटकीय रूप से घट सकती है।

इस दिशा में जनजागरूकता भी जरूरी है। अक्सर बच्चे और बुजुर्ग कुत्तों को देखकर घबरा जाते हैं और भागने लगते हैं, जिससे कुत्ते उन्हें पीछा कर काट लेते हैं। अगर लोग यह सीखें कि कुत्तों से कैसे व्यवहार करना है, कब खतरा होता है और कब नहीं, तो हम बहुत सी घटनाओं को रोक सकते हैं। हिंसक रवैया – जैसे पत्थर मारना या जहर देना – समस्या को और गंभीर बनाता है, क्योंकि इससे कुत्तों का व्यवहार और आक्रामक हो जाता है।

भारत की आवारा कुत्तों की समस्या जटिल है, इसके लिए राजनीतिक इच्छाशक्ति, पर्याप्त संसाधन और समुदाय की भागीदारी जरूरी है। हमें यह समझना होगा कि कुत्तों को हटाना आसान विकल्प लगता है, लेकिन यह न तो टिकाऊ है और न ही मानवीय। स्थायी समाधान वही है जिसमें इंसान और कुत्ता दोनों सुरक्षित, स्वस्थ और सम्मानजनक सहअस्तित्व की राह पर चल सकें।

यही दृष्टिकोण हमें एक करुणामय और जिम्मेदार नागरिक के साथ ही सह जीवन वाली सामजिक व्यवस्था को भी मजबूती प्रदान करेगा। ***

क्या विकास की उपज है भूकंप?

डॉ. ओ. पी. जोशी

जुलाई में रूस के सुदूर पूर्वी कामचटका क्षेत्र में 8.7 तीव्रता का भूकंप आया था जिसे अभी तक का पांचवा बड़ा भूकंप बताया गया है। विश्व के लगभग 12 देशों में इसके झटके आये, परंतु रूस व जापान में सर्वाधिक 200 झटके महसूस किए गए। इस वर्ष के सात माह में 20 से ज्यादा देशों में अलग-अलग तीव्रता के भूकंप दर्ज किये गए हैं। पाकिस्तान में तीन बार, दिल्ली 'एनसीआर' (राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र) एवं बैतूल (म.प्र.) में दो बार भूकंप हुआ।

वैसे तो भूकंप एक प्राकृतिक आपदा है, परंतु मनुष्य द्वारा विकास के नाम पर किये गए कारनामों से इसकी आवृत्ति बढ़ी है। वैज्ञानिक आधार पर अभी तक यह सिद्धान्त मान्य है कि पृथ्वी का भू-भाग बारह भारी पट्टी समान रचनाओं (टेक्टोनिट प्लेट्स) पर टिका है, जो एक तरल पदार्थ (लावा) पर तैरती रहती है। तैरते-तैरते इनके टकराने से ऊर्जा निकलती है, जिससे भूकंप होता है।

भूकंप के इस सर्वमान्य सिद्धान्त के अलावा कई अन्य क्षेत्रों में किये गए अध्ययनों से भूकंप के कारणों के संबंध में कुछ नई अवधारणाएं/परिकल्पनाएं सामने आयी हैं। ये अवधारणाएं कोई सिद्धांत तो नहीं हैं, परंतु इन पर ध्यान देना जरूरी लगता है। इन अवधारणाओं में धरती का बुढ़ाना, दर्द-तरंगों का निर्माण, बड़े बांध, ग्लेशियर्स का पिघलना, परमाणु विस्फोट व बमबारी, भूजल, तेल का ज्यादा दोहन एवं उपग्रह संचार प्रणाली आदि प्रमुख हैं।

खगोलशास्त्रियों एवं भौतिकविदों के अनुसार पृथ्वी का 'गुरूत्वाकर्षण बल' कुछ कम होता जा रहा है। इसे धरती का बूढ़ा होना माना गया है। बूढ़ी, कमजोर धरती ज्यादा कंपकंपा रही है, जो भूकंप के रूप में प्रकट होता है। गुरूत्वाकर्षण बल कम क्यों हो रहा है, यह अभी ज्यादा स्पष्ट नहीं है।

'एटियोलॉजी ऑफ अर्थक्वेक – ए न्यू एप्रोच' नामक किताब (लेखक एमएम बजाज, एमएसएम इब्राहिम और विजयराज सिंह) में यह बताया गया है कि कत्ल के कगार पर खडे जानवरों द्वारा उत्पन्न शोर, तनाव व भय से एक प्रकार की 'दर्द–तरंगें' पैदा होती हैं, जो भूकंप पैदा करने में सहायक हो सकती हैं। लेखकों ने कई सबूतों के आधार पर यह बताने का प्रयास किया है कि पशुओं के संहार के साथ भूकंप के कारण को जोड़ना संभव है।

प्रसिद्ध वैज्ञानिक एलबर्ट आईस्टीन ने भी भू–विज्ञान के क्षेत्र में 'आईस्टीयन पेन–वेव्ज' (ईपीडब्ल्यू) की चर्चा की है, हालांकि ज्यादातर वैज्ञानिक इससे सहमत नहीं हैं।

डेढ सौ मीटर से ऊंचे बड़े बांधों से भूकम्पनीयता बढ़ने के कई अध्ययन किये गए हैं। बांध क्षेत्र में बांध स्वयं की सीमेन्ट, कांक्रीट व लोहे की भारी–भरकम रचना तथा जलाशय, दोनों मिलकर उस क्षेत्र में बहुत अधिक भार बढ़ा देते हैं।

बांध की रचना का भार तो वही रहता है, परंतु जलाशय में पानी का वजन घटता–बढ़ता रहता है। पानी भूमि में चट्टानों की दरारों से होकर काफी गहराई में पहुंचकर वहां कुछ हलचल पैदा करता है। अमेरिकी वैज्ञानिक ने सर्वप्रथम 1935 में कोलोराडो नदी पर बने हूवर–बांध के बड़े जलाशय में भरे पानी के भार को बताया था।

केरिबा (द.अफ्रीका), क्रेमास्ता (यूनान) तथा कोयना (भारत) में आये भूकम्प भी बांध–जनित बताये गये हैं। जापान के वैज्ञानिकों ने लम्बे समय तक भूकम्पों का अध्ययन कर यह बताया कि ग्लोबल–वार्मिंग के प्रभाव से ग्लेशियर्स की बर्फ पिघलने से भूकम्प आ सकते हैं। पृथ्वी पर सही संतुलन बनाये रखने हेतु ग्लेशियर्स जैसे बने थे, उनका उसी अवस्था में बने रहना जरूरी है।

ग्लेशियर्स पर कम बर्फ की मात्रा पृथ्वी की प्लेटों पर पड़ रहे भार को बदलती है जिसको समायोजित करने हेतु भू–गर्भीय प्रक्रिया भूकम्प के रूप में प्रकट होती है। यह अध्ययन भूकम्प की 'समास्थिती अवधारणा' से मेल खाता है। इसके अनुसार भूतल के पर्वत और समुद्र के धरातल एक–दूसरे को तराजू की

तरह संतुलित रखते हैं। 08 अक्टूबर 2005 को पाकिस्तान तथा उत्तर भारत के कुछ क्षेत्रों में आये भूकम्प का कारण ग्लेशियर्स पिघलने से जोड़ा गया था।

कुछ भूकम्पों को परमाणु विस्फोट एवं बमबारी से भी जोड़कर देखा गया है। वर्ष 1976 में ताशकंद (रूस) में आये भूकम्प का सम्भावित कारण कुछ सप्ताह पहले किये गये दो परमाणु विस्फोट बताये गए थे। गुजरात में आये भूकम्प की वजह भी कच्छ के रण के उस पार पाकिस्तान द्वारा परमाणु विस्फोट बतायी गयी थी।

'लास-अल्मोस नेशनल लैब' (अमेरिका) के भूकम्पविदों का दावा है कि कुछ भूकम्पों का कारण गुपचुप तरीके से किए गए परमाणु परीक्षण भी हो सकते हैं। रूस की एक एजेंसी ने मार्च 2012 में उत्तरी अफगानिस्तान के दाहानी-जोया स्थान में 7.2 तीव्रता के भूकम्प का कारण अमेरिकी बमबारी बताया था।

कुछ स्थानों पर जब भूजल एवं तेल का ज्यादा दोहन किया गया तो भूकम्पनीयता बढ़ने की सम्भावना बतायी गयी। भूजल व तेल के ज्यादा दोहन से धरती के अंदर निर्वात (वेक्युम) बन जाता है, जिसे भरने के लिए चट्टानों में हलचल होती है एवं कंपन पैदा होता है। 'राष्ट्रीय भू-भौतिकी अनुसंधान केन्द्र, हैदराबाद' तथा राजस्थान के भूगर्भशास्त्री प्रो. एके सिन्हा ज्यादा भूजल दोहन को भूकम्प का कारण मानते हैं।

'राष्ट्रीय भूकम्प विज्ञान केन्द्र' ने दिल्ली 'एनसीआर' में बढ़ती भूकम्पनीयता के जो कारण बताए हैं उनमें यमुना का सूखना, जलस्त्रोतों की समाप्ति तथा ज्यादा भूजल दोहन प्रमुख हैं।

मई 1995 में रूस के शहर नेफ्तेगोर्क में आए भूकम्प का कारण तेल के ज्यादा दोहन को माना गया था। दुनिया में बढ़ती संचार सुविधा के लिए कई उपग्रह कार्यरत हैं। इन उपग्रहों से प्रसारण के लिए धरती पर पहुंचने वाली विद्युत-चुम्बकीय तरंगें भी भूकम्पनीयता बढाने में सहायक हो सकती हैं।

केलिफोर्निया में बढ़ते भूकम्पों का एक संभावित कारण संचार उपग्रहों का बढ़ना भी बताया गया है। यह तो निश्चित है कि भूकम्प का आना एक प्राकृतिक आपदा है, परंतु विकास के नाम पर किये गये कार्यों के प्रभाव से इनकी संख्या बढ़ने की सम्भावना को एकदम नकारा नहीं जा सकता। ***

*** चिपको संदेश ***

क्या हैं वनों के उपकार,
मिट्टी, पानी और बयार।
मिट्टी, पानी और बयार,
ये जिंदा रहने के आधार।।

भरपेट संतुलित भोजन टीके से कम नहीं

डॉ. अनुराग भार्गव

हाल ही में डॉ. अनुराग भार्गव ने PLOS Global Public Health के एक आलेख में पर्याप्त व संतुलित पोषण और संक्रामक व गैर–संक्रामक रोगों से बचाव के इतिहास पर विचार करते हुए बताया है कि भरपेट संतुलित आहार को टीके की संज्ञा देना उचित ही है।

यह तो जानी–मानी बात है कि जीवित रहने, स्वास्थ्य और बीमारियों के बचाव के लिए पोषण अनिवार्य है। 1970 के दशक में यह तक कहा गया था कि निमोनिया जैसे सांस सम्बंधी रोगों, दस्त (डायरिया) व अन्य आम संक्रमणों के विरुद्ध पर्याप्त भोजन ही सबसे कारगर टीका है। यह देखा जा चुका था कि कुपोषण की हालत में पूरक पोषण से संक्रमणों के प्रकोप में कमी आती है। हाल ही में झारखंड में एक परीक्षण किया गया था – रैशन्स (RATIONS) यानी रिडच्यूसिंग एक्टिवेशन ऑफ ट्यूबरकुलोसिस थ्रू इम्प्रूवमेंट ऑफ न्यूट्रिशनल स्टेटस (अर्थात पोषण की स्थिति में सुधार के ज़रिए सक्रिय टीबी में कमी)। इस परीक्षण ने स्पष्ट रूप से दर्शाया है कि पूरक पोषण परिवारों में टीबी प्रकोप को 50 प्रतिशत तक कम करता और कुपोषित मरीज़ों में मृत्यु दर को भी 35–50 प्रतिशत तक कम कर सकता है।

टीका भी तो यही करता है कि व्यक्ति को किसी संक्रमण से लड़ने या बीमारी से बचने में मदद करता है और इस लिहाज़ से पोषण की भूमिका टीके की अवधारणा का विस्तार ही है। 1970 के दशक में पोषण विशेषज्ञ और विश्व स्वास्थ्य संगठन में पोषण निदेशक रहे डॉ. मॉइज़ेस बेहर ने अपने एक लेख में कहा था, एक ओर तो टीकाकरण या पर्यावरण में सुधार जैसे विशिष्ट उपायों द्वारा

संक्रामक रोगों पर नियंत्रण से समुदाय की पोषण की स्थिति बेहतर होती है।

दूसरी ओर, पर्याप्त भोजन संक्रामक रोगों के ज़्यादा गंभीर प्रभावों से सुरक्षा देता है; उन रोगों के संदर्भ में भी जिनके लिए हमारे पास सटीक या आसान उपाय उपलब्ध नहीं हैं। फिलहाल तो समुचित भोजन ही दस्त, श्वसन तथा अन्य आम संक्रमणों के विरुद्ध सबसे कारगर 'टीका' है। यह बात रैशन्स परीक्षण में प्रत्यक्ष रूप में सामने आई ही है, लेकिन इसके कई ऐतिहासिक प्रमाण भी उपलब्ध हैं। ये प्रमाण हमें बीसवीं सदी के पूर्वार्ध में हुए कुछ 'कुदरती प्रयोगों' से मिले हैं।

यू.के. में 1918 में टीबी मरीज़ों की देखभाल और पुनर्वास के लिए पैपवर्थ विलेज सेटलमेंट स्थापित किया गया था। इसके पीछे सोच यह थी कि मात्र सेनेटोरियम उपचार पर्याप्त नहीं है, बल्कि टीबी के मरीज़ों के लिए रोज़गार व सामुदायिक जीवन जैसे सहारे की भी ज़रूरत होती है। यहां रह रहे सक्रिय टीबी ग्रस्त मरीज़ों के संपर्क में आए परिवारों में टीबी के प्रकोप में जो 84 प्रतिशत की कमी आई थी, उसके लिए समुचित पोषण को मुख्य कारण माना गया था। आश्चर्य की बात यह थी कि उस दौरान टीबी संक्रमण के कुल प्रसार में कोई कमी नहीं आई थी मगर पोषण ने संक्रमण को बीमारी में परिवर्तित होने से बचा लिया था।

जर्मनी के युद्धबंदी शिविरों में ब्रिटेन तथा रूस के युद्धबंदी सैनिक (पीओडब्ल्यू) एक जैसे हालात में रह रहे थे। देखा गया कि ऐसे एक शिविर में मात्र 1.2 प्रतिशत ब्रिटिश सैनिकों में ही टीबी विकसित हुई थी जबकि 15 प्रतिशत रूसी सैनिक टीबी से ग्रस्त हुए। यानी रूसी सैनिकों के मुकाबले ब्रिटिश सैनिकों में टीबी का प्रकोप 92 प्रतिशत कम रहा। इसका कारण इस तथ्य से जोड़कर देखा गया था कि रेड क्रॉस द्वारा दिया जाने वाला अतिरिक्त पोषण पार्सल (1000 किलोकैलोरी तथा 30 ग्राम प्रोटीन) मात्र ब्रिटिश सैनिकों को मिलता था।

ऐसे ही एक अन्य युद्धबंदी शिविर में एक ब्रिटिश डॉक्टर आर्किबाल्ड कोक्रेन ने पाया था कि टीबी का प्रकोप रूसियों में 6 प्रतिशत, फ्रांसिसियों में 0.5 प्रतिशत और ब्रिटिश सैनिकों में शून्य प्रतिशत था। गौरतलब है कि फ्रांसिसियों को भी 1944 के बाद अतिरिक्त फूड पैकेट मिलना बंद हो गया था।

युद्धबंदी शिविरों में किए गए इन अवलोकनों के अलावा आम आबादी के आंकड़े भी यही कहानी कहते हैं। विश्व स्वास्थ्य संगठन की एक रिपोर्ट के मुताबिक 2015-2023 के दरम्यान दुनिया भर में टीबी के प्रकोप में 8.3

प्रतिशत तथा टीबी मृत्यु दर में 23 प्रतिशत की कमी आई है। सवाल यह उठता है कि रासायनिक उपचार और (टीबी के लिए) बीसीजी टीका आने से पहले के दौर में टीबी के प्रकोप और टीबी से होने वाली मौतों की क्या स्थिति थी। पहली बात तो यह है कि यू.के. जैसे जिन देशों में आज टीबी का बोझ कम है, वहां भी अतीत में टीबी का प्रकोप और टीबी से होने वाली मौतों का आंकड़ा काफी अधिक था।

एक अनुमान के मुताबिक 1851 में यू.के. में श्वसन सम्बंधी टीबी से प्रति लाख आबादी में 268 मौतें होती थी। और तो और, वहां हर चार में से 1 मौत टीबी के कारण होती थी। गौर करने वाली बात यह है कि यू.के. में टीबी प्रकोप और मृत्यु में गिरावट रासायनिक उपचार और टीकाकरण जैसे उपाय लागू होने से पहले हो गई थी। 1891 में टीबी से होने वाली मौतों में 50 प्रतिशत की गिरावट आ चुकी थी और यह
मात्र 139 प्रति लाख रह गई थी।

यू.के. में 1913 में टीबी का प्रकोप प्रति एक लाख आबादी में 300 था और मृत्यु दर प्रति लाख आबादी में 100 थी और 1940 में यह इसकी 50 प्रतिशत रह गई थी। गौरतलब है कि टीबी के लिए रासायनिक उपचार 1947 में उपलब्ध हुआ था। रासायनिक उपचार शुरू होने से पहले यू.के. में टीबी प्रकोप 3 प्रतिशत प्रति वर्ष की दर से कम हो रहा था और उपचार उपलब्ध होने के बाद गिरावट की दर 10 प्रतिशत वार्षिक हो गई थी।

1962 में थॉमस मैककिओन का महत्वपूर्ण पर्चा प्रकाशित हुआ था जिसमें उन्होंने 1850 से 1950 की अवधि में यू.के. में टीबी सम्बंधी मौतों में गिरावट के विभिन्न कारकों का विश्लेषण किया था। उनका निष्कर्ष था कि टीबी प्रकोप में गिरावट का प्रमुख कारक जीवन स्तर में सुधार, खासकर पोषण में सुधार रहा था। 1850 के दशक के बाद यू.के. में कामगारों की आमदनी में सुधार हुआ था। यह देखा गया था कि आमदनी में सुधार और श्वसन सम्बंधी टीबी से मृत्यु दर में गिरावट लगभग एक ही दर पर हुए थे।

मैककिओन का सुझाव था कि बेहतर पोषण से व्यक्तियों में रोग के विरुद्ध प्रतिरोध पैदा होता है और यह मृत्यु दर में गिरावट का कारण बनता है। इसके पक्ष में उन्होंने कुछ परोक्ष प्रमाण भी प्रस्तुत किए थे।

वैसे नोबेल विजेता रॉबर्ट फोगेल ने 1850 से 1950 के बीच यू.के. में कैलोरी के उपभोग में वृद्धि के प्रत्यक्ष प्रमाण भी प्रस्तुत किए थे। इसी सम्बंध में एक और प्रमाण यह था कि 1870 से 1970 के बीच ब्रिटेन समेत युरोपीय लोगों के कद में औसतन 11 से.मी. (यानी प्रति

दशक 1 से.मी.) की वृद्धि हुई थी। कद को किसी भी आबादी के पोषण व जीवन स्तर का एक सूचकांक माना जाता है।

इस बात के और भी प्रमाण प्रस्तुत हुए हैं कि यू.के. में टीबी के प्रकोप व मृत्यु दर में कमी का सम्बंध पोषण में सुधार से रहा है। 1968 में विश्व स्वास्थ्य संगठन द्वारा प्रकाशित एक मोनोग्राफ में पोषण व संक्रमण के बीच दो तरफा सम्बंध की समीक्षा की गई थी। मोनोग्राफ में स्पष्ट किया गया था कि पोषण की स्थिति टीबी समेत कई संक्रमणों की आवृत्ति, गंभीरता और मृत्यु दर पर असर डालती है और संक्रमण अपने तईं पोषण की स्थिति को बदतर करते हैं।

इस परस्पर क्रिया के अनुकूली प्रतिरक्षा सम्बंधी क्रियामार्गों का खुलासा 1960 व 1970 के दशकों में हुआ। इसके बाद यह भी दर्शाया गया था कि कुपोषण का प्रतिकूल असर शारीरिक अवरोधों, जन्मजात प्रतिरक्षा तथा अनुकूली प्रतिरक्षा के कई पहलुओं पर होता है। यह भी पता चला था कि टी-कोशिकाओं और मैक्रोफेज द्वारा प्रदत्त सुरक्षा टीबी से बचाव में महत्वपूर्ण होती है और कुपोषण टी-कोशिकाओं के कामकाज को कमज़ोर करता है।

टीबी की बीमारी होने के लिए संक्रमण ज़रूरी होता है लेकिन मात्र संक्रमण हो जाए तो टीबी नहीं होती - संक्रमण के बाद मात्र 10 प्रतिशत लोग ही सक्रिय टीबी की हालत में पहुंचते हैं। इसका मतलब है कि हमारा प्रतिरक्षा तंत्र 90 प्रतिशत संक्रमणों को बीमारी तक पहुंचने से रोक लेता है। अर्थात सक्रिय टीबी के विकास का कुछ न कुछ सम्बंध तो प्रतिरक्षा तंत्र के कामकाज में गड़बड़ी से है।

यूएस सर्जन जनरल का मत है कि प्रतिरक्षा तंत्र की अर्जित कमज़ोरी (जिसे ठीक किया जा सकता है) का प्रमुख कारण कुपोषण है। जॉन्स हॉपकिन्स विश्वविद्यालय के डॉ. विलियम बाइसेल ने इसे न्यूट्रिशनली एक्वायर्ड इम्यूनोडेफिशिएंसी (N-AIDS) यानी 'कुपोषण की वजह से अर्जित प्रतिरक्षा अभाव' की संज्ञा दी है। यह छ-अखउ्ढ दुनिया भर में टीबी के बोझ का प्रमुख कारण है।

वर्ष 2022 में दुनिया भर में पांच साल से कम उम्र के 49 लाख बच्चों की मौत हुई थी (यानी रोज़ाना 13,000 से अधिक) और इनमें से आधी मौतें कुपोषण और संक्रमण के जानलेवा गठबंधन का परिणाम थीं।

वर्ष 1959 से 1964 के बीच ग्वाटेमाला में एक प्रयोग हुआ था। यहां एक गांव में चिकित्सा सुविधा या स्वच्छता

व्यवस्था में कोई सुधार न करते हुए मात्र पूरक पोषण दिया गया था। इस गांव में संक्रमणों का प्रकोप काफी कम हुआ, बनिस्बत उस गांव के जहां उत्कृष्ट चिकित्सा सुविधाएं और साफ-सफाई व्यवस्था उपलब्ध कराई गई थी। गांवों के बीच अंतर उल्लेखनीय था – चार वर्षों की अवधि में पूरक पोषण प्राप्त करने वाले गांव में प्रति बच्चा 6.6 अस्वस्थताएं हुई जबकि दूसरे गांव में 18.7 अस्वस्थता प्रति बच्चा।

शुरुआती जीवन में कुपोषण के सेहत पर असर नवजात शिशु में, शैशवावस्था में, स्कूल-पूर्व उम्र में और जीवन भर देखे जाते हैं। मां का कुपोषण भ्रूण के कुपोषण में दिखता है जो जन्म के समय कम वज़न के रूप में सामने आता है। भ्रूणावस्था में कुपोषण का सम्बंध आगे चलकर गैर-संक्रामक रोगों (जैसे मोटापे, मधुमेह, उच्च रक्तचाप, हृदय रोगों तथा गुर्दों के जीर्ण रोगों) से देखा गया है।

निम्न-मध्यम आमदनी वाले देशों में गैर-संक्रामक रोगों का प्रकोप तेज़ी से बढ़ रहा है। इन देशों में जन्म के समय कम वज़न आम बात है। पिछले 30 वर्षों में अनुसंधान से प्रमाणित हुआ है कि उच्च रक्तचाप, डायबिटीज़, गुर्दा रोग जैसी बीमारियों की उत्पत्ति का सम्बंध विकसित होते भ्रूण को मिलने वाले पोषण में कमी से हो सकता है। यह इस बात की व्याख्या कर देता है कि क्यों भारत के निम्न आय वर्ग में भी ये रोग काफी व्याप्त हैं। वैसे इसका सम्बंध अस्वस्थ भोजन तथा सुस्त जीवनशैली से भी हो सकता है।

अस्वस्थ भोजन का सम्बंध प्राय: खाद्यान्न असुरक्षा से देखा जाता है। पर्याप्त संतुलित भोजन के अभाव में प्रोसेस्ड भोजन का उपभोग बढ़ता है जिसमें अत्यधिक शर्करा, संतृप्त वसाएं, सोडियम होते हैं लेकिन पोषक तत्वों का अभाव होता है। भारत में इसका असर डायबिटीज़ (जल्दी शुरू होने वाले) के बढ़ते प्रकोप में दिख रहा है। भ्रूणावस्था में कुपोषण के बाद यदि बढ़ती उम्र में अधिक ऊर्जा का सेवन किया जाए या प्रोटीन व कैलोरी का अभाव रहे तो डायबिटीज़ का जोखिम बढ़ सकता है।

जन्म के समय कम वज़न का परिणाम शरीर की वृद्धि कम होने और संज्ञान के विलंबित विकास के रूप में सामने आ सकता है। लिहाज़ा, बच्चों को सबसे पहला टीका तो गर्भावस्था के दौरान महिला को पर्याप्त संतुलित आहार के रूप में होगा। जन स्वास्थ्य पर पोषण के असर का प्रथम प्रमाण तो ग्रेट ब्रिटेन द्वारा द्वितीय विश्व युद्ध के समय अपनाई गई युद्धकालीन खाद्य नीति थी। इस नीति ने सारे नागरिकों के लिए, उनकी आमदनी की परवाह न

करते हुए, ज़रूरी खुराक सुनिश्चित की थी।

लोगों की खुराक में दूध और सब्ज़ियों के सेवन में क्रमश: 28 प्रतिशत और 34 प्रतिशत वृद्धि देखी गई जबकि मांस की खपत में 21 प्रतिशत की कमी आई। परिणाम यह रहा कि शिशुओं, नवजात बच्चों और माताओं की मृत्यु दर न्यूनतम स्तर पर पहुंच गई और एनीमिया का प्रकोप कम हुआ, स्कूली बच्चों की विकास दर तथा दांतों की सेहत बेहतर हुई, और आम आबादी का पोषण स्तर युद्ध-पूर्व की स्थिति से बेहतर हो गया।

पर्याप्त संतुलित भोजन बीमारियों की रोकथाम में अहम भूमिका निभाता है। एक मायने में यह टीके का काम करता है। पर्याप्त संतुलित भोजन उसे कह सकते हैं जो व्यक्ति की उम्र, वज़न, काम के अनुसार पर्याप्त ऊर्जा व प्रोटीन प्रदान करे और विविध अनाजों, दालों, फलों, सब्ज़ियों, स्वस्थ वसाओं, मेवों, जंतु स्रोतों से प्राप्त भोजन (दूध, पोल्ट्री, मछली) की दृष्टि से संतुलित हो। यह टीबी पैदा करने वाले एसिड-फास्ट बैसिली के विरुद्ध एक टीके की क्षमता रखता है।

इसकी कई खूबियां इसे एक अनोखा टीका बनाती हैं। पर्याप्त संतुलित भोजन रोग की रोकथाम का उपाय भी है और रोग हो जाने पर मुत्यु से बचाव का तरीका भी है। यह टीबी उपचार के दौरान कुपोषण सम्बंधी जोखिमों से बचाव कर सकता है। ये जोखिम काफी होते हैं। जैसे, रैशन्स परीक्षण में देखा गया था कि शुरुआत में लगभग आधे टीबी मरीज़ काफी कम वज़न वाले थे और अगले दो महीनों में उनका वज़न औसतन 5 प्रतिशत बढ़ा और मृत्यु का खतरा 60 प्रतिशत कम हुआ। इसके विपरीत जिन टीबी मरीज़ों को पोषण का सहारा नहीं दिया गया था, उनका वज़न पहले दो महीनों में या तो स्थिर रहा या कम होता गया। और मृत्यु का जोखिम पांच गुना अधिक रहा।

एक व्यवस्थित समीक्षा में यह भी देखा गया कि कम वज़न का सम्बंध उपचार-उपरांत मृत्यु से भी है। कम वज़न वाले मरीज़ों में यह 14.8 प्रतिशत रही जबकि अन्य मरीज़ों में मात्र 5.6 प्रतिशत। जिन मरीज़ों का वज़न शुरुआत में कम था और परीक्षण के दौरान उनका वज़न पर्याप्त नहीं बढ़ा, उनमें टीबी के फिर से सिर उठाने का ज़ोखिम लगभग दुगना रहा।

पर्याप्त संतुलित आहार टीबी मरीज़ों के लिए रोकथाम और इलाज दोनों भूमिकाएं निभा सकता है - तत्काल व दीर्घावधि दोनों तरह के प्रतिकूल परिणामों के लिहाज़ से। यह बीमारी के रोकथाम में तो कारगर है ही, साथ ही यह मृत्यु की रोकथाम तथा बीमारी के वापिस सिर उठाने से रोकथाम में भी कारगर है। ***

खतरनाक है प्रकृति से खिलवाड़

प्रमोद भार्गव

भारतीय दर्शन के अनुसार मानव सभ्यता का विकास हिमालय और उसकी नदी-घाटियों से माना जाता है। ऋशि-कश्यप और उनकी दिति-अदिति नाम की पत्नियों से मनुश्य की उत्पत्ति हुई और सभ्यता के क्रम की षुरूआत हुई। एक बड़ी आबादी को षुद्ध और पौश्टिक पानी देने के लिए भागीरथी गंगा को नीचे उतार लाए। यह विकास धीमा था और विकास को आगे बढ़ाने के लिए हिमालय में कोई हलचल नहीं की गई थी। लेकिन आज विकास के बहाने भोग की जल्दबाजी में समूचे हिमालय को दरकाने का सिलसिला अत्यंत तेज गति से चल रहा है। उत्तराखंड के उत्तरकाशी में धराली समेत तीन स्थानों पर आई प्राकृतिक आपदाओं ने सत्ताधारियों को चेतावनी दी है कि प्रकृति से खिलवाड़ कतई उचित नहीं है। यदि खिलवाड़ जारी रहा तो इसके गंभीर परिणाम भुगतने होंगे। धराली और हर्शिल में फूटे प्रलय के प्रकोप ने जो दृश्य दिखाए हैं, वे भयावह हैं। एक बार फिर सबसे पवित्र चार धाम यात्रा से जुड़े इस मार्ग पर केदारनाथ आपदा की कहानी प्रकृति ने दोहराई है।

केदारनाथ की तरह यहां भी देशभर से यात्रा में आए अनेक श्रद्धालुओं को इस त्रासदी ने लील लिया है। दरअसल वर्तमान में समूचा हिमालयी क्षेत्र आधुनिक विकास और जलवायु परिवर्तन के खतरों से दो-चार हो रहा है। मौसम और प्राकृतिक आपदाओं की जानकारी देने वाले उपग्रह चाहे जितने आधुनिक तकनीक से जुड़े हों, वे अनियमित हो चुके मौसम के चलते बादलों के फटने, हिमखंडो के टूटने और भारी बारिश होने की क्षेत्रवार जानकारी देने में आसमर्थ ही रहे हैं। इसीलिए 2013 में केदारनाथ

प्रलय, 2014 में दुनिया का स्वर्ग माने जाने वाले जम्मू-कश्मीर राज्य की नदियों की बाढ़ से नरक में बदल जाने के संकेत नहीं मिल पाए थे। वर्शा की तीव्रता ऐसी मुसीबत बनी थी कि देखते-देखते स्वर्ग की धरती पर इठलाती-बलखाती नदियां

झेलम, चिनाब और तवी ने अपनी प्रकृति बदलकर रौद्र रूप धारण कर लिया था। राज्य का जर्रा-जर्रा विनाश की कुरूपता में तब्दील हो गया था। अलगाववाद का प्रपंच अलापने में लगी राज्य सरकार का तंत्र पंगु हो गया था। तब सेना की मदद से इस भीषण त्रासदी से पार पाना संभव हो पाया था।

इसी तरह 2021 में नंदा देवी राष्ट्रीय उद्यान के निकट हिमखंड के टूटने से तबाही मची थी। इससे धौलीगंगा नदी में अचानक बाढ़ आई और तपोवन विश्णुगाड पनबिजली परियोजना में काम कर रहे अनेक मजदूर काल के गाल में समा गए थे। हिमाचल प्रदेश में भी भू-स्खलन, बादल फटने और भारी बारिश से तबाही देखने में आ रही है। लेकिन मौसम तकनीक सटीक जानकारी नहीं दे पा रही है।

मौसम विज्ञानी जता रहे हैं कि मानसून में लंबी बाधा के चलते देश के कई हिस्सों में सूखे के हालात निर्मित हो गए है और हिमाचल व उत्तराखंड में भीशण बारिश ने तबाही का तांडव रच दिया है। मानसून में रुकावट आ जाने से बादल पहाड़ों पर इकट्ठे हो जाते है और यही मूसलाधार बारिश के कारण बनते हैं। यह तबाही इसी का परिणाम है। तबाही के कारण मानसून पर डालकर जवाबदेही से नहीं बच सकते।

केदारनाथ में बिना मानसून के रुकावट के ही तबाही आ गई थी। अतएव यह कहना बेमानी है कि मानसून की रुकावट तबाही में बदली? हकीकत में तबाही के असली कारण समूचे हिमालय क्षेत्र में बीते एक दशक से पर्यटकों के लिए सुविधाएं जुटाने के परिप्रेक्ष्य में जल विद्युत संयंत्र और रेल परियोजनाओं की जो बाढ़ आई हुई है, वह है। इन योजनाओं के लिए हिमालय क्षेत्र में रेल गुजारने और कई हिमालयी छोटी नदियों को बड़ी नदियों में डालने के लिए सुरंगें निर्मित की जा रही हैं। बिजली परियोजनाओं के लिए भी जो संयंत्र लग रहे हैं, उनके लिए हिमालय को खोखला किया जा रहा है।

इस आधुनिक औद्योगिक और प्रौद्योगिकी विकास का ही परिणाम है कि आज हिमालय ही नहीं, हिमालय के शिखरों पर स्थित पहाड़ दरकने लगे हैं, जिन पर हजारों साल से मानव बसाहटें अपनी ज्ञान-परंपरा के बूते जीवन-यापन करने के साथ हिमालय और वहां रहने वाले अन्य जीव-जगत की भी रक्षा करते

चले आ रहे हैं। हिमालय और पृथ्वी सुरक्षित बने रहें, इस दृश्टि से कृतज्ञ मनुश्य ने अथर्ववेद में लिखे पृथ्वी–सूक्त में अनेक प्रार्थनाएं की हैं। इस सूक्त में राष्ट्रीय अवधारणा एवं वसुधैव कुटुम्बकम की भावना को विकसित, पोषित एवं फलित करने के लिए मनुष्य को नीति और धर्म से बांधने की कोशिश की हैं।

लेकिन हमने कथित भौतिक सुविधाओं के लिए अपने आधार को ही नष्ट करने का काम आधुनिक विकास के बहाने कर दिया। आपदा प्रभावित धराली और हर्षिल क्षेत्र में बहने वाली भागीरथी नदी पर बनी 1300 मीटर लंबी और 80 मी. चौड़ी झील से पानी का रिसाव हो रहा है, इसे पोकलैंड मशीनों से तोड़ने की तैयारी है। जिसे रिसाव की थोड़ा प्रवाह बढ़ जाए और झील का जलस्तर घट जाए। यदि इस झील के बीच कोई बड़ा बोल्डर है, तो इसे नियंत्रित विस्फोटक से तोड़ा जाएगा।

पहाड़ों में अतिवृश्टि के चलते इस नदि पर यह झील अस्तित्व में आ गई है। हिमालय में झील, तालाब और हिमनदों का बनना एक आश्चर्यजनक किंतु स्वाभाविक प्रक्रिया है। चूंकि यह झील हर्शिल और धराली के लिए संकट बन गई है, इसे तोड़ा जाना जरूरी हो गया है। यदि यह प्राकृतिक प्रकोप के चलते टूटती है तो धराली एवं हर्शिल को ओर खतरा बढ़ जाएगा। देहरादून सिंचाई विभाग के प्रमुख इंजीनियर सुभाश पांडे के नेतृत्व में अभियंताओं का एक 12 सदस्यीय दल हेलिकॉप्टर से झील के निरीक्षण में लगा है।

झील के प्रवाह में यदि कोई चट्टान बाधा है तो उसे रिमोट से नियंत्रित विस्फोटक से तोड़ा जाएगा। इस विधि से वही हिस्सा टूटता है, जितना तोड़ना जरूरी होता है। हालांकि अभी तक यह निश्चित अनुमान नहीं लगाया जा सका है कि इस जल प्रलय का वास्तविक कारण क्या है? भू–विज्ञानी असमंजस में हैं।

सच्चाई जानने के लिए वे अब रिमोट सेंसिग डाटा एवं सेटेलाइट डाटा की प्रतीक्षा में है। इससे स्थिति स्पश्ट होगी की खीर गंगा नदी में आया सैलाब बादल फटने, हिमनद टूटने, भू–स्खलन से आया या फिर किसी अन्य कारण से आया। इस सिलसिले में सीबीआरआई रुढ़की के मुख्य भू–विज्ञानी डॉ डीपी कानूनगो का कहना है कि नदी में अचानक इतना सैलाब किस कारण से आया यह कहना फिलहाल संभव नहीं है।

भू–विज्ञानी प्राध्यापक एसपी प्रधान इस आपदा को प्राकृतिक और मानव निर्मित दोनों ही कारण मान रहे हैं। इन विरोधाभासी अनुमानों से साफ है कि आई आपदा के बारे में कारण संबंधी

दृष्टिकोण स्पष्ट नहीं है। दरअसल पर्वतीय क्षेत्रों में प्रकृति के साथ संतुलन बनाकर विकास करना आवश्यक होना चाहिए। लेकिन कथित विकास की चकाचौंध में राज्य सरकारें कोई संतुलित नीति बना भी लेती हैं तो उसके क्रियान्वयन में ईमानदारी नहीं बरतती हैं। यही वजह है पूरे हिमालय क्षेत्र में अंधाधुंध विकास की परियोजनाएं हिमालय की आंतरिक सुगठित संरचना को नश्ट कर रही हैं।

इस आपदा ने यह जरूर जता दिया है कि उत्तराखंड के उच्च हिमालयी क्षेत्र में ग्लेशियर झीलों के खतरे बढ़ रहे है राज्य में करीब 1266 ऐसी झीलें हैं।

नेशलन डिजास्टर मैनेजमेंट अथॉरिटी (एनडीएमए) ने उत्तराखंड में 13 हिमनदों को खतरनाक श्रेणी के रूप में चिन्हित किया है। इनमें से पांच को उच्च संकट की श्रेणी में रखा है। हालांकि यह मुद्दा कोई नया नहीं है। 2013 में केदारनाथ जल प्रलय के बाद यह मुद्दा महत्वपूर्ण हो गया था। क्योंकि चौड़ाबाड़ी ग्लेशियर झील के फटने से केदारनाथ में भीशण तबाही आई थी। इसके बाद से ही उच्च हिमालयी क्षेत्रों में स्थित हिमनदों की निगरानी और इनसे बचाव के लिए अध्ययन करने की दिशा में पहल की गई थी।

लेकिन अध्ययन के क्या निश्कर्श निकलें और उनके अनुरूप समस्या से निपटने के क्या उपाय किए गए इस दिशा में कोई पारदर्शी जानकारी नहीं है। चामौली में वसुधारा ताल और पिथौरागढ़ की झीलों के अध्ययन की भी तैयारी की जा रही है। लेकिन इन अध्ययनों के कोई कारगार परिणाम निकलेंगे यह कहना मुश्किल है।

उत्तराखंड भूकंप के सबसे खतरनाक जोन–5 में आता है। कम तीव्रता के भूकंप यहां निरंतर आते रहते हैं। मानसून में हिमाचल और उत्तराखंड के पहाड़ी जिलों में भू– स्खलन बादल फटने और बिजली गिरने की घटनाएं निरंतर सामने आ रही हैं। पहाड़ों के दरकने के साथ छोटे–छोटे भूकंप भी देखने में आ रहे हैं। उत्तराखंड और हिमाचल में बीते सात साल में 130 बार से ज्यादा छोटे भूकंप आए हैं। हिमाचल और उत्तराखंड में जल विद्युत और रेल परियोजनाओं ने बड़ा नुकसान पहुंचाया है।

टिहरी पर बंधे बांध को रोकने के लिए तो लंबा अभियान चला था। पर्यावरणविद और भू–वैज्ञानिक भी हिदायतें देते रहे हैं कि गंगा और उसकी सहायक नदियों की अविरल धारा बाधित हुई तो गंगा तो अस्तित्व खोएगी ही, हिमालय की अन्य नदियां और झीलें भी अस्तित्व के संकट से जूझेंगी। ***

रेत खनन और पर्यावरण संकट

राजकुमार सिन्हा

सुप्रीम कोर्ट ने बीते शुक्रवार को कहा कि यदि नदी की वार्षिक प्राकृतिक पुनर्भरण क्षमता का आकलन करने वाला अध्ययन उपलब्ध नहीं है, तो रेत खनन परियोजनाओं को पर्यावरणीय मंजूरी नहीं दी जा सकती है।

न्यायमूर्ति पी.एस. नरसिम्हा और ए.एस.चंदुरकर की पीठ ने कहा कि पुनर्भरण संबंधी डेटा, जिला सर्वेक्षण रिपोर्ट के साथ पर्यावरणीय मंजूरी के लिए अनिवार्य पूर्व शर्त है। न्यायालय ने पाया कि मामले में तैयार जिला सर्वेक्षण रिपोर्टें ङ्गमूलभूत रूप से त्रुटिपूर्ण थीं क्योंकि इनमें पुनर्भरण डेटा नहीं था।

इस आधार पर इन्हें क़ानूनन अस्वीकार्य मानते हुए कोर्ट ने अपीलों को खारिज कर दिया और राष्ट्रीय हरित अधिकरण के उस फ़ैसले को बरकरार रखा, जिसमें जम्मू-कश्मीर केंद्र शासित प्रदेश में तीन ब्लॉकों के रेत खनन के लिए दी गई पर्यावरणीय मंजूरियां रद्द कर दी गई थीं।

कोर्ट ने कहा कि जैसे वन संरक्षण में यह सुनिश्चित करने के लिए वृक्षों की वृद्धि दर का आकलन आवश्यक है कि पेड़ों की कटाई उनकी वृद्धि से अधिक न हो, उसी प्रकार पुनर्भरण अध्ययन हमें यह निर्णय लेने में सक्षम बनाता है कि क्या रेत खनन नदी के प्राकृतिक संतुलन को बिगाड़े बिना किया जा सकता है। इसलिए यह मानना अनिवार्य है कि जिला सर्वेक्षण रिपोर्ट तभी वैध और स्वीकार्य होगा जब उसमें उचित पुनर्भरण अध्ययन सम्मिलित हो।

वर्तमान संदर्भ में पुनर्भरण अध्ययन की आवश्यकता स्पष्ट करते हुए न्यायालय ने कहा कि ङ्गनिर्माण गतिविधियां तेज़ी से बढ़ रही हैं और निर्माण योग्य रेत की मांग अत्यधिक बढ़ रही है। कहा जाता है कि विश्व 2050 तक

इस संसाधन से वंचित हो सकता है।

निर्माण योग्य रेत जलीय पर्यावरण, जैसे नदियों में पाई जाती है और यह पारिस्थितिक तंत्र की प्रदाय सेवाओं में से एक है। नियंत्रित परिस्थितियों में भी नदी तल और तट से रेत का खनन पर्यावरण पर प्रभाव डालता है। भौतिक पर्यावरण में इसके प्रमुख प्रभाव नदी तल का चौड़ा होना और नीचा होना हैं। जैविक पर्यावरण में इसका सबसे बड़ा असर जैव विविधता में कमी है, जो जलीय और तटीय वनस्पति एवं जीव–जंतुओं से लेकर पूरे बाढ़ मैदान क्षेत्र तक फैली होती है।

आसान उपलब्धता के कारण निर्माण परियोजनाओं में नदी की रेत और बजरी का बड़े पैमाने पर प्रयोग हुआ है। लेकिन खनन की विधि तथा नदी की आकृति और जल–गतिकी विशेषताओं के अनुसार यह नदी तल और तट पर कटाव या अन्य नकारात्मक प्रभाव डाल सकता है। इसलिए उपयुक्त अध्ययन, विशेषकर पुनर्भरण अध्ययन, करना ज़रूरी है ताकि नदी खनन के टिकाऊ और किफायती तरीके.खोजे जा सकें।

कोर्ट ने स्पष्ट किया कि ङ्गवर्तमान कानूनी व्यवस्था यह अनिवार्य करती है कि पुनर्भरण रिपोर्ट वैज्ञानिक तरीके से तैयार हो और वह जिला सर्वेक्षण रिपोर्ट का हिस्सा बने। इस दृष्टि से कोई भी जिला सर्वेक्षण रिपोर्ट, जिसमें उचित पुनर्भरण अध्ययन शामिल नहीं है, तो यह अस्वीकार्य है। न्यायमूर्ति नरसिम्हा ने कहा कि ङ्गहमारे विचार से, जम्मू–कश्मीर की पर्यावरण मुल्यांकन समिति ने गंभीर त्रुटि की है, जब उसने यह जानते हुए भी की जिला सर्वेक्षण रिपोर्ट पूर्ण नहीं है। फिर भी कार्यवाही आगे बढ़ाया जो कि वन एवं पर्यावरण मंत्रालय के 2016 की अधिसूचना और 2016 व 2020 की रेत खनन दिशानिर्देशों के अनुरूप तैयार नहीं हुई है तथा इसमें पुनर्भरण डेटा अधूरा है।

कोर्ट ने कहा कि यह दुर्भाग्यपूर्ण है कि जम्मू–कश्मीर राज्य पर्यावरण प्रभाव आकलन प्राधिकरण ने नियामक ईमानदारी से समझौता किया और बिना पुनर्भरण रिपोर्ट वाले जिला सर्वेक्षण रिपोर्ट के आधार पर पर्यावरणीय मंजूरी दे दी। परियोजना प्रवर्तक को 'अधिकतम 1 मीटर की गहराई तक सीमित खनन और 2.0 के बल्क घनत्व पर खनिज का उत्पादन व 34,800 मीट्रिक टन की अधिकतम उत्पादन सीमा' जैसी शर्तों के साथ अनुमति देने का जो समझौता किया गया, वह अस्वीकार्य है। इस प्रकार की अनुचित सिफ़ारिश पर्यावरण मुल्यांकन समिति और राज्य पर्यावरण प्रभाव आकलन प्राधिकरण के नियामक विफलता का उदाहरण है।

अंत में कोर्ट ने कहा कि उपरोक्त चर्चा के आलोक में हमें एनजीटी के निर्णय को बरकरार रखने और जम्मू-कश्मीर केंद्रशासित प्रदेश, एनएचएआई तथा परियोजना प्रस्तावक की अपीलों को खारिज करने में कोई संकोच नहीं है।

ज्ञात हो कि यह मामला राष्ट्रीय राजमार्ग प्राधिकरण और जम्मू-कश्मीर व लद्दाख केंद्र शासित प्रदेश द्वारा दायर अपील से संबंधित था, जिसमें उन्होंने हरित न्यायाधिकरण के आदेश को चुनौती दी थी। हरित न्यायाधिकरण ने यह कहते हुए पर्यावरणीय मंजूरी को अवैध ठहराया था कि यह ऐसी जिला सर्वेक्षण रिपोर्ट पर आधारित थी जिसमें पुनर्भरण डेटा शामिल नहीं था। शहरीकरण और बढ़ते निर्माण के साथ रेत की मांग लगातार बढ़ रही है। इस मांग को पूरा करने के लिए रेत खनन में लगातार वृद्धि हो रही है। इसका सीधा असर पारिस्थितिकी तंत्र पर पड़ रहा है।

देखा जाए तो आज जिस तेजी से खनन किया जा रहा है वो मानव-प्रकृति के बीच के संतुलन को बिगाड़ रहा है। ऐसे में मानव

विकास की अंधी दौड़ की कीमत प्रकृति को चुकानी पड़ रही है।

पर्यावरण के जानकार मानते हैं कि रेत खनन से नदियों के पारिस्थितिकी तंत्र को कई तरह से नुकसान होता है, जिसमें नदी के तल का क्षरण, जलीय आवास का नष्ट होना, और जैव विविधता में कमी शामिल है। इससे नदी के प्रवाह और अवसादन पैटर्न में बदलाव आता है, जिससे बाढ़ और कटाव बढ़ता है। यह नदी के गंदलेपन को बढ़ाता है, ऑक्सीजन की मात्रा घटाता है, और भूजल स्तर को नीचे कर सकता है, जिससे स्थानीय पेयजल की कमी होती है।

रेत खनन से नदी का प्राकृतिक संतुलन बिगड़ता है, जिससे स्थानीय जीवों के जीवन को खतरा होता है।माइन्स एंड मिनरल रेगुलेशन एक्ट 1957 में प्रमुख और उपखनिज को परिभाषित किया है। 1957 से अब तक स्थिति बदल चुकी है और रेत का इस्तेमाल कई गुणा बढ़ गया है। रेत खनन के कारण पर्यावरण पर हो रहे असर की व्यापकता को देखते हुए इसे लघु नहीं, बल्कि प्रमुख खनिज में शामिल कर सख्त पर्यावरणीय अनुमति का प्रावधान किया जाना चाहिए।

वर्तमान दौर में नदियां कम्पनियों, कॉर्पोरेट्स और सरकार के मुनाफा कमाने का साधन बन चुकी है। रेत खनन नर्मदा नदी के इकोसिस्टम को गंभीर रूप से प्रभावित कर रहा है। इसके लिए निम्नलिखित उपाय किया जाना चाहिए। अवैध रेत खनन की गतिविधियों पर नजर रखने के लिए एक विशेष निगरानी दल का

गठन किया जाए। अवैध खनन करने वालों पर कठोर कार्रवाई की जाए और उनके उपकरण जब्त किए जाएं। निर्माण कार्यों के लिए रेत के वैकल्पिक साधनों की खोज और उपयोग को प्रोत्साहित किया जाए।

इसी वर्ष मई माह में मध्य प्रदेश हाई कोर्ट ने 'पेसा एक्ट' की धारा 6 के उल्लंघन को लेकर राज्य सरकार और माइनिंग विभाग सहित लगभग सात जिलों के कलेक्टर को नोटिस जारी किए हैं। मामला पेसा एक्ट 1996 की धारा 6 के तहत अधिसूचित क्षेत्रों में खनन से जुड़ा है। याचिका में मंडला जिले में रेत का ठेका लेने वाले वंशिका कंस्ट्रक्शन कंपनी पर भी कई आरोप लगाए गए हैं। कोर्ट ने सभी अनावेदकों को चार हफ्ते में जवाब पेश करने का निर्देश दिया है।

याचिकाकर्ता की ओर से अधिवक्ता रामेश्वर पी सिंह और विनायक प्रसाद साह ने कोर्ट में दलील दी कि सरकार ने वंशिका कंस्ट्रक्शन को नियम के खिलाफ अधिसूचित अनुसूचित क्षेत्र मंडला जिले की 26 खदानों से रेत निकालने के लिए तीन साल का ठेका दे दिया है।

जबकि मंडला, डिंडोरी, धार, झाबुआ, शहडोल और बड़वानी जिले की खदानों को राष्ट्रपति द्वारा 'पेसा एक्ट' के तहत अधिसूचित क्षेत्र घोषित किया गया है। इन क्षेत्रों में किसी भी प्रकार के खनन के लिए संबंधित ग्राम पंचायतों से अनुमति और अनापत्ति लेना जरूरी है, लेकिन वंशिका कंस्ट्रक्शन द्वारा लगातार हैवी मशीनें लगाकर रेत उत्खनन किया जा रहा है। याचिका में आरोप लगाया गया है कि वंशिका कंस्ट्रक्शन द्वारा प्रति डंपर 12 से 15 टन की अनुमति का भी उल्लंघन कर रेत निकालकर 50 टन तक के बड़े-बड़े डंपरों से परिवहन किया जा रहा है। ***

वैज्ञानिकों ने बनाया नया सेल्फ-असेम्बलिंग बैटरी मटेरियल

इलेक्ट्रिक वाहनों (ईवी) की तेजी से बढ़ती मांग के बीच अमेरिका स्थित एमआईटी यूनिवर्सिटी के शोधकर्ताओं ने ऐसा सेल्फ-असेंबलिंग मैटेरियल विकसित किया है, जो बैटरी के इलेक्ट्रोलाइट की तरह काम करता है। यह साधारण ऑर्गेनिक लिक्विड में डालते ही तुरंत टूटकर अपने मूल अणुओं में बिखर जाता है।

इस प्रक्रिया से बैटरी कॉटन कैंडी की तरह घुलकर अलग-अलग हिस्सों में बंट जाती है। इससे कैथोड और एनोड को आसानी से रीसाइकल किया जा सकता है। यह मैटेरियल अरैमिड एम्फिफाइल्स (सिंथेटिक फाइबर) से बना है, जिनकी संरचना केव्लर जैसी मजबूत होती है।

गगनयान में 2027 में जाएंगे अंतरिक्ष यात्री

भारत के अपने अंतरिक्ष मिशन गगनयान की तैयारी का 80 प्रतिशत काम पूरा हो गया है और इस साल के अंत तक पहला मानव रहित मिशन लॉन्च किया जाएगा, जबकि साल 2027 के आरंभ में अंतरिक्ष यात्रियों को भेजा जायेगा।

भारतीय अंतरिक्ष अनुसंधान संगठन (इसरो) के अध्यक्ष वी. नारायणन ने पिछले दिनों हुए एक संवाददाता सम्मेलन के दौरान बताया कि गगनयान मिशन की तैयारी का काम जोरशोर से चल रहा है। व्हीकल हेल्थ मैनेजमेंट सिस्टम, क्रू इस्केप सिस्टम और पैराशूट का विकास आदि समेत 80 प्रतिशत तैयारी पूरी कर ली गयी है। शेष 20 प्रतिशत काम भी मार्च 2026 तक पूरे कर लिए जाएंगे।

डॉ. नारायणन ने कहा कि इस साल की अंतिम तिमाही में, संभवतः दिसंबर के आसपास, पहला मानव रहित मिशन जी–1 लॉन्च किया जायेगा। इसके बाद साल 2027 में इसरो पहली बार मावन मिशन अंतरिक्ष में भेजेगा। उन्होंने बताया कि हाल ही में वायु सेना के ग्रुप कैप्टन शुभांशु शुक्ला अंतरिक्ष में जाने वाले दूसरे शुभाशु और अंतर्राष्ट्रीय अंतरिक्ष स्टेशन (आईएसएस) पर जाने वाले पहले भारतीय बने। वह एक्सिओम–4 मिशन में पायलट के तौर पर आईएसएस पर गये थे। उन्होंने वहां अंतरिक्ष प्रौद्योगिकी, अंतरिक्ष में खेती जैसे क्षेत्रों में सात प्रयोग किये और उनके इस अनुभव से गगनयान मिशन में काफी मदद मिलेगी।

संवाददाता सम्मेलन में अंतरिक्ष विभाग के राज्य मंत्री जितेंद्र सिंह, श्री शुक्ला, ग्रुप कैप्टन और प्रशांत नायर भी मौजूद थे। श्री शुक्ला और श्री नायर गगनयान के चार संभावित क्रू सदस्यों में शामिल हैं। अन्य दो संभावित क्रू सदस्य अजित कृष्णन और अंगद प्रसाद हैं।

इसरो प्रमुख ने कहा कि श्री शुक्ला के अंतरिक्ष के अनुभवों से चार हजार पन्नों का दस्तावेज तैयार किया गया है जो आने वाली पीढ़ियों के भी उपयोगी होगा। ग्रुप कैप्टन शुक्ला ने बताया कि उनके द्वारा अंतरिक्ष में किये गये प्रयोगों का विश्लेषण करने के बाद उनके परिणाम सामने आ सकेंगे।

बेतूल में प्रदेश का पहला कंजर्वेशन रिज़र्वे

मध्यप्रदेश प्रदेश का पहला कंजर्वेशन रिजर्व अब बैतूल जिले में बन गया है। इसका नाम, ताप्ती कंजर्वेशन रिजर्व रखा गया है। मुख्यमंत्री मोहन यादव

की अध्यक्षता वाले स्टेट वाइल्ड लाइफ बोर्ड ने तीन महीने पहले सरकार ने इसका नोटिफिकेशन जारी कर दिया है। यह रिजर्व बैतूल, भीमपुर और भैंसदेही, तहसीलों के जंगलों में फैला है। कुल क्षेत्रफल 250 वर्ग किलोमीटर है। इसमें 224.844 वर्ग किमी रिजर्व फॉरेस्ट और 25.156 वर्ग किमी प्रोटेक्टेड फॉरेस्ट शामिल हैं।

यह रिजर्व सतपुड़ा टाइगर रिजर्व (मप्र) व मेलघाट टाइगर रिजर्व (महाराष्ट्र). को जोड़ने वाले वन्यजीव कॉरिडोर की सुरक्षा करेगा। ताप्ती, चिचोली और तावड़ी फॉरेस्ट रेंज मिलाकर इसे गठित किया गया है। यह देश का पहला कंजर्वेशन रिजर्व है जो दो टाइगर रिजर्व को जोड़ता है। सुझाव प्रदेश भाजपाध्यक्ष व स्टेट वाइल्ड लाइफ बोर्ड सदस्य हेमंत खंडेलवाल ने 13 मार्च को बोर्ड की 28वीं बैठक में दिया था। प्रस्ताव को 21 मई की बैठक में मंजूरी मिली थी।

प्रदेश में जल्द ही दो और कंजर्वेशन रिजर्व गठित किए जाएंगे। इनमें एक बालाघाट का सोनेवानी कंजर्वेशन रिजर्व और गुना का राघौगढ़ कंजर्वेशन रिजर्व शामिल है। सोनेवानी कंजर्वेशन रिजर्व कान्हा और पेंच टाइगर रिजर्व के बीच में मौजूद 163.20 वर्ग किलोमीटर के जंगल में फैला होगा,जिसका इस्तेमाल टाइगर कॉरिडोर के रूप में करते हैं।

वहीं, राघौगढ़ कंजर्वेशन रिजर्व सिर्फ 115 हेक्टेयर में फैला होगा। यहां वन्यजीव संरक्षण अधिनियम 1972 के तहत सैंक्चुरी जैसी सुरक्षा मिलेगी। स्थानीय लोगों के वनोपज संग्रह के अधिकार यथावत रहेंगे।

आदिवासी पहले की तरह महुआ, तेंदूपत्ता, चिरौंजी, गोंद, सूखी लकड़ी जुटा सकेंगे। होम स्टे और वाइल्ड लाइफ सफारी की अनुमति मिलेगी। ताप्ती कंजर्वेशन रिजर्व टाइगर और लेपर्ड के मूवमेंट का सबसे अहम कॉरिडोर है। यहां ब्लैक बक, चीतल, सांभर और संकटग्रस्त जंगली उल्लू यहां देखे जा सकते हैं।

प्रदेश में जल्द दो नए कंजर्वेशन रिजर्व बनेंगे। पहला बालाघाट का सोनेवानी, जो 163.20 वर्ग किलोमीटर क्षेत्र में कान्हा और पेंच टाइगर रिजर्व को जोड़ने वाला कॉरिडोर होगा। दूसरा गुना का राघौगढ़, जो 115 हेक्टेयर क्षेत्रफल का होगा।

यहां वन्यजीव संरक्षण अधिनियम 1972 के तहत सेंचुरी जैसी सुरक्षा मिलेगी। स्थानीय लोगों के वनोपज संग्रह के अधिकार यथावत रहेंगे। आदिवासी पहले की तरह महुआ, तेंदूपत्ता, चिरौंजी, गोंद, सूखी लकड़ी जुटा सकेंगे। होम स्टे और वाइल्ड लाइफ सफारी की अनुमति मिलेगी।

टाइगर रिजर्व के बीच ताप्ती कंजर्वेशन रिजर्व टाइगर और लेपर्ड के मूवमेंट का सबसे अहम कॉरिडोर है। इसके अलावा यहां जंगली कुत्ते, बायसन (इंडियान गौर), ब्लैक बक, चीतल, सांभर भी पाए जाते हैं। संकटग्रस्त जंगली उल्लू (फॉरेस्ट आउटलेट) यहां आसानी से देखे जा सकते हैं।

भारतीयों की औसत उम्र घटा रहा वायु प्रदूषण

भारत में वायु प्रदूषण के बढ़ते स्तर से लोगों की जीवन प्रत्याशा पर गंभीर असर पड़ रहा है। शिकागो विश्वविद्यालय के ऊर्जा नीति संस्थान (ईपीआइसी) की 2025 की नई रिपोर्ट के अनुसार, प्रदूषण के कारण भारतवासियों की औसत उम्र 3.5 साल तक कम हो रही है।

रिपोर्ट बताती है कि भारत की 140 करोड़ आबादी ऐसे भारत कहती है जहा आवक औसत, कण प्रदूषण (पार्टिकुलेट पॉल्यूशन) स्तर विश्व स्वास्थ्य संगठन (डब्ल्यूएचओ) की गाइडलाइन से अधिक है। देश का सबसे प्रदूषित क्षेत्र उत्तरी मैदानी इलाका बताया गया है, जहां 54.44 करोड़ लोग (38.9% आबादी) रहते हैं। यहां प्रदूषण स्तर डब्ल्यूएचओ मानक तक घटा दिया जाए, तो लोग औसतन 5 साल अधिक जी सकते हैं।

दिल्ली व उत्तरी मैदानी क्षेत्रों से बाहर राजस्थान, मध्यप्रदेश व महाराष्ट्र में भी पार्टिकुलेट पॉल्यूशन का असर गंभीर है। अगर प्रदूषण स्तर डब्ल्यूएचओ मानक तक लाया जाए, तो इन राज्यों में जीवन प्रत्याशा क्रमशः 3.3 साल, 3.1 साल और 2.8 साल बढ़ सकती है। सरकार ने 2019 में राष्ट्रीय स्वच्छ वायु कार्यक्रम शुरू किया था, जिसका लक्ष्य 2017 के मुकाबले 2024 तक प्रदूषण में 20–30% की कमी लाना था।

2022 में इसे संशोधित कर 131 गैर–मानक शहरों में 2026 तक 40% कमी का लक्ष्य रखा। 2023 तक इन शहरों में प्रदूषण 2017 की तुलना में 10.7% कम हुआ, जिससे 44.55 करोड़ लोगों की औसत जीवन प्रत्याशा में छह माह बढ़ी।

3.5 साल औसत उम्र वायु प्रदूषण से घट रही है भारत में। 140 करोड आबादी डब्ल्यूएचओ मानक से अधिक प्रदूषण वाले क्षेत्रों में रहती है। 9.4 महीने औसत उम्र बढ सकती है सबसे स्वच्छ क्षेत्रों में भी वायु गुणवत्ता वैश्विक स्तर तक हो। 8 गुना ज्यादा भारत का पीएम 2.5 स्तर डब्ल्यूएचओ मानक से। 46% लोग राष्ट्रीय मानक से भी अधिक प्रदूषण वाले क्षेत्रों में रहते हैं।

जीनोमः कृषि और आयुर्वेद दवाओं में मिलेगा लाभ

पेड़–पौधों में बीमारियों से लड़ने की उच्चतम क्षमता होती है। पेड़–पौधे दुनिया से कभी खत्म भी नहीं होंगे। इसके लिए भोपाल स्थित भारतीय विज्ञान शिक्षा और अनुसंधान संस्थान (आइसर) ने करीब सात पौधों, फलों का जीनोम तैयार किया है। इसे अंजाम दिया है जैविक विज्ञान विभाग के प्रो. विनीत शर्मा के नेतृत्व में वैज्ञानिकों ने। इनमें हल्दी, गिलोय, आंवला, जामुन, पीपल, बरगद और हाल ही में शामिल अन्नोना स्क्वामोसा यानी कस्टर्ड एपल (सीताफल) जैसे औषधीय और सांस्कृतिक महत्त्व वाले पेड़–पौधे शामिल हैं।

वैज्ञानिकों के अनुसार इससे न केवल परंपरागत आयुर्वेद को वैज्ञानिक मजबूती मिलेगी, बल्कि भविष्य में कृषि, औषधि विकास और जलवायु परिवर्तन, से निपटने के प्रयासों की खोज में मदद मिलेगी। वैज्ञानिकों ने सीताफल का उच्च गुणवत्ता वाला जीनोम तैयार है।

इसे ऑक्सफोर्ड नैनोपोर और इल्लुमिना तकनीकों की मदद से सात प्यूडोक्रोमोजोम्स में व्यवस्थित किया गया। शोध के अनुसार जलवायु परिवर्तन ने इसकी संरचना को प्रभावित किया था। विश्लेषण में फल की मिठास, शर्करा परिवहन और औषधीय महत्त्व वाले द्वितीयक मेटाबोलाइट उत्पादन से जुड़े जीनों की पहचान हुई। अध्ययन से फल की गुणवत्ता, उपज और रोग–प्रतिरोधक क्षमता बढ़ाने का रास्ता खुलैगा।

हल्दीः करक्यूमिनॉइड्स, कैंसर रोधी और सूजन कम करने वाले गुण, गिलोयः इम्यूनिटी बूस्टर, आंवलाः शक्तिशाली एंटीऑक्सीडेंट, जामुनः एंटी–डायबिटिक और तनाव सहनशील, पीपलः पर्यावरण शुद्ध करने और औषधीय महत्त्व, बरगदः औषधीय गुणं, सीताफलः रोग–प्रतिरोधक क्षमता बढ़ाने वाला।

मंगल पर पौधे उगाने में मदद करेंगे रोबोट

अमरीका की मैसाचुसेट्स इंस्टीट्यूट ऑफ टेक्नोलॉजी (एमआइटी) के वैज्ञानिकों ने ऐसे छोटे रोबोट बनाए हैं जो देखने में मधुमक्खी जैसे हैं। ये अपने पंखों को एक सेकंड में 400 बार फड़फड़ा सकता है।

वैज्ञानिकों की उम्मीद है कि ये छोटे रोबोट भविष्य में कृत्रिम परागण में मदद कर सकती है। एमआइटी के पीएचडी छात्र सियाओ कहते हैं, अगर हम मंगल ग्रह पर पेड़–पौधे उगाने की सोच रहे हैं, तो वहां हमारा रोबोट काम आएगा। ***

पर्यावरण को समृद्ध करता जैव ईंधन

योगेश कुमार गोयल

पिछले कुछ वर्षों से पूरी दुनिया जलवायु परिवर्तन के दुष्प्रभाव झेल रही है और जलवायु परिवर्तन के कारण सामने आ रही प्राकृतिक आपदाओं की संख्या एवं तीव्रता निरन्तर बढ़ रही है। जलवायु परिवर्तन के ही कारण हमारा पारिस्थितिक तंत्र बिगड़ गया है, जिसका असर अब जीवन के लगभग हर क्षेत्र में स्पष्ट देखने को मिल रहा है।

जलवायु परिवर्तन का एक बड़ा कारण मनुष्यों द्वारा पारम्परिक जीवाश्म ईंधन का बड़े स्तर पर दोहन किया जाना भी है, जिसका पर्यावरण पर बेहद खतरनाक प्रभाव देखा जा रहा है। यही कारण है कि पारम्परिक जीवाश्म ईंधन के बजाय अपरम्परागत जीवाश्म ईंधन को इस्तेमाल करने की जरूरत महसूस की जा रही है।

पारम्परिक जीवाश्म ईंधन के विकल्पों के महत्व के बारे में जागरूकता बढ़ाने के लिए ही प्रतिवर्ष 'विश्व जैव ईंधन दिवस' मनाया जाता है। यह दिवस मनाने का उद्देश्य वातावरण में ग्रीनहाउस गैसों के उत्सर्जन को कम करने, ऊर्जा सुरक्षा को बढ़ावा देने तथा ग्रामीण विकास का समर्थन करने में जैव ईंधन के महत्व को पारंपरिक जीवाश्म ईंधन के एक स्थायी विकल्प के रूप में उजागर करना है।

जलवायु परिवर्तन में होती वृद्धि के साथ वैश्विक ऊर्जा खपत पैटर्न में बदलाव अब समय की बड़ी मांग है, इसीलिए जैव ईंधन दिवस के माध्यम से दुनियाभर में लोगों को अक्षय ऊर्जा स्रोतों को गैर–नवीकरणीय जीवाश्म ईंधन से बदलने के लिए प्रोत्साहन देने के प्रयास किए जा रहे हैं।

भारत में विश्व जैव ईंधन दिवस

पहली बार अगस्त 2015 में पैट्रोलियम और गैस मंत्रालय द्वारा मनाया गया था। देश में जैव ईंधन का विकास स्वच्छ भारत अभियान और आत्मनिर्भर भारत अभियान जैसी योजनाओं के अनुरूप ही है। दुनियाभर में अब जैव ईंधन को हमारा भविष्य बचाने के लिए एक उम्मीद के तौर पर देखा जा रहा है। दुबई में हुए 'कॉप-28' में 28वें संयुक्त राष्ट्र जलवायु परिवर्तन सम्मेलन 2050 तक शून्य कार्बन उत्सर्जन का लक्ष्य हासिल करने और जीवाश्म ईंधन से दूर रहने का आह्वान किया गया था और संयुक्त राष्ट्र जलवायु कांफ्रेंस के इतिहास में ऐसा सुझाव पहली बार दिया गया था। हालांकि यह अलग बात है कि जीवाश्म ईंधन को चरणबद्ध तरीके से चलन से बाहर करने का इसमें कोई उल्लेख नहीं था।

नई दिल्ली में जी20 शिखर सम्मेलन के अवसर पर 9 सितंबर 2023 को प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी द्वारा 'ग्लोबल बायोफ्यूल एलायंस' (वैश्विक जैव ईंधन गठबंधन) की शुरुआत भी की गई थी। जैव ईंधन के इस्तेमाल को बढ़ावा देने के लिए भारत की पहल पर बनाए गए इस गठबंधन के प्रमख उद्देश्यों में प्रौद्योगिकी प्रगति को सुविधाजनक बनाना, टिकाऊ जैव ईंधन के इस्तेमाल को बढ़ावा देना, हितधारकों के व्यापक स्पेक्ट्रम की भागीदारी के जरिये मजबूत मानक सेटिंग, बायोफ्यूल मार्केट को मजबूत करना, वैश्विक बायोफ्यूल कारोबार को सुविधाजनक बनाना, तकनीकी सहायता प्रदान करना इत्यादि शामिल हैं।

जैव ईंधन को ऊर्जा के किसी भी स्रोत, जो जैविक सामग्री हो, जैसे कृषि अपशिष्ट, फसल, पेड़ अथवा घास से निकाला जाता है। जैव ईंधन पर्यावरण के अनुकूल ईंधन हैं, जो कम समय में उत्पादित होते हैं और तरल अथवा गैसीय रूप में संग्रहीत किए जाते हैं।

जीवाश्म ईंधन के विपरीत, जैव ईंधन प्रकृति में नवीकरणीय, बायोडिग्रेडेबल और टिकाऊ होते हैं। पारम्परिक जीवाश्म ईंधन की तुलना में जैव ईंधन में सल्फर नहीं होता और कार्बन मोनोऑक्साइड तथा विषाक्त उत्सर्जन भी कम होता है। कार्बन के किसी भी स्रोत से जैव ईंधन का उत्पादन किया जा सकता है। चूंकि जैव ईंधन को बायोमास संसाधनों की मदद से बनाया जाता है, इसीलिए इसे पुनः बनाया जा सकता है।

एक ओर जहां जीवाश्म ईंधन के जलने से कार्बन उत्सर्जन होता है और यह हमारे वातावरण तथा पर्यावरण के लिए अत्यंत हानिकारक है, वहीं जैव ईंधन न केवल कार्बन उत्सर्जन को कम करते हुए स्वच्छ वातावरण सुनिश्चित करता है

बल्कि कच्चे तेल पर हमारी निर्भरता को कम करने की कुंजी भी है।

पारम्परिक ईंधन का वैकल्पिक संस्करण जैव ईंधन पर्यावरण को बेहतर बनाता है। जैव ईंधन ऊर्जा का नवीकरणीय और जैव निम्नीकरणीय स्रोत होता है, जो नवीकरणीय संसाधनों से बनता है और जीवाश्म डीजल की तुलना में अपेक्षाकृत कम ज्वलनशील है।

यह कृषि अपशिष्ट अथवा पेड़-पौधों और फसलों, वनस्पति, पशु अपशिष्ट, शैवाल, औद्योगिक अपशिष्ट इत्यादि किसी भी प्रकार की जैविक सामग्री से उत्पन्न हो सकता है, जिसमें काफी बेहतर चिकनाई वाले गुण होते हैं। एक ओर जहां कोयले अथवा तेल के जलने से वैश्विक तापमान में वृद्धि होती है और ये ईंधन ग्लोबल वार्मिंग का बहुत बड़ा कारण बनते हैं, वहीं जैव ईंधन मानक डीजल की तुलना में कम हानिकारक कार्बन उत्सर्जन का कारण बनता है और ग्रीनहाउस गैसों के प्रभाव को कम करता है।

भारत उन्नत जैव ईंधन क्षेत्र के उत्पादन के लिए विभिन्न परियोजनाओं पर काम कर रहा है। अधिकांश पर्यावरणविदों का यही मानना है कि जहां जीवाश्म ईंधन बहुत कीमती हैं, वहीं जैव ईंधन सबसे बुद्धिमान ऊर्जा विकल्प है और जो चीज लागत प्रभावी, कुशल, टिकाऊ एवं नवीकरणीय हो, वह सदैव बेहतर होती है। भारत में विभिन्न प्रकार के जैव ईंधन के उपयोग की ओर कदम बढ़ाए जा चुके हैं, जिनमें बायोइथेनॉल, बायोडीजल, ड्रॉप-इन ईंधन, बायो-सीएनजी, उन्नत जैव ईंधन इत्यादि प्रमुख हैं।

जैव ईंधन के उपयोग को प्रोत्साहित करने वाली कई योजनाएं शुरू की जा चुकी हैं। केन्द्र सरकार द्वारा जून 2018 में जैव ईंधन पर राष्ट्रीय नीति को स्वीकृति प्रदान की गई थी, जिसका लक्ष्य 2030 तक 20 प्रतिशत इथेनॉल मिश्रण और 5 प्रतिशत बायोडीजल मिश्रण के लक्ष्य तक पहुंचना है। यह योजना उन्नत जैव ईंधन के उत्पादन को प्रोत्साहित करती है।

बहरहाल, दुनियाभर में जैव ईंधन का उपयोग बढ़ाए जाने के कई प्रमुख लाभ हो सकते हैं, जैसे इससे कच्चे तेल पर निर्भरता कम होने से जहां पर्यावरण में अपेक्षित सुधार होने की प्रबल संभावनाएं हैं, वहीं इससे खासकर ग्रामीण इलाकों में रोजगार के अवसर उत्पन्न होंगे और ग्रामीण क्षेत्रों में भी ऊर्जा पहुंचाई जा सकेगी, साथ ही परिवहन ईंधन की बढ़ती मांग को भी आसानी से पूरा किया जा सकेगा।

इस समय वाहनों के लिए उपयोग होने वाले पारम्परिक ईंधन और प्राकृतिक गैस की कीमतें आसमान छू रही

हैं और आने वाले समय में इनके दामों में और बढ़ोतरी होगी। ऐसे में जैव ईंधन को बढ़ावा देना समय की बहुत बड़ी मांग है क्योंकि यह ईंधन अन्य ईंधन की कीमतों की तुलना में न केवल सस्ते हैं बल्कि ऊर्जा के अच्छे स्रोत भी हैं, जो प्रदूषण भी नहीं फैलाते। चूंकि जैव ईंधन नवीकरणीय बायोमास संसाधनों के माध्यम से बनाए जाते हैं, इसलिए इनके उपयोग को बढ़ावा देने से पर्यावरण प्रदूषण से मुक्ति मिल सकती है।

जैव ईंधन समाज के एक बड़े हिस्से के लिए आय और रोजगार पैदा करने में भी बड़ी मदद कर सकता है। माना जा रहा है कि जैव ईंधन पर्यावरण को कोई नुकसान पहुंचाए बगैर इस सदी की ऊर्जा जरूरतों को पूरा करने में बड़ी मदद करेगा। ***

मध्यप्रदेश बनेगा आयुर्वेद का हब

मध्यप्रदेश अब देश का पहला राज्य बन गया है, जिसे केंद्र सरकार से राष्ट्रीय आयुष मिशन (एनएएम) के तहत मार्च 2026 तक 180 करोड़ रुपए का सबसे बड़ा अनुदान मिला है। इस राशि से राज्य में अगले 18 महीने में सरकारी आयुर्वेद क़ॉलेजों की संख्या 7 से बढ़कर 15 हो जाएगी। अभी 7 आयुर्वेद कॉलेजों में 513 सीटें हैं, जो बढ़कर 1500 तक हो जाएंगी। अभी एक साथ 5 आयुर्वेद कॉलेजों सागर, शहडोल, नर्मदापुरम, बालाघाट, मुरैना और ट्राइबल क्षेत्र में दो कॉलेजों झाबुआ और शुजालपुर को मंजूरी मिली है। इसके अलावा डिण्डौरी में जिला खनिज प्रतिष्ठान मद से कॉलेज स्थापित होगा। इन सभी मेडिकल कॉलेज में 100–100 सीटें बढ़ेंगी। हर कॉलेज में पढ़ाई के साथ शोध भवन, अस्पताल, छात्रावास और स्टाफ क्वार्टर जैसी सुविधाएं होंगी। 70 करोड़ रुपए की लागत से हर कॉलेज का निर्माण कार्य 2027–28 तक पूरा कर लिया जाएगा।

इन मेडिकल कॉलेजों को खोलने के लिए 1570 नए पदों पर भी मंजूर हुए है। पर्यटन और आयुष सेवाओं को जोड़ते हुए हेल्थ टूरिज्म को बढ़ावा देने की तैयारी भी है। इसके तहत उज्जैन और खजुराहो में 50–50 बेड वाले सुपर स्पेशलिटी पंचकर्म और वैलनेस सेंटर बनेंगे। हर प्रोजेक्ट पर 15 करोड़ रुपए खर्च होंगे। भोपाल और नरसिंहपुर में पहले से ऐसे केंद्र चल रहे हैं, जबकि महेश्वर, सीहोर, इंदौर, अमरकंटक, पन्ना, बालाघाट, गुना, भिंड और श्योपुर में निर्माण कार्य जारी है। विशेषज्ञ मानते हैं कि खजुराहो जैसे अंतरराष्ट्रीय पर्यटन स्थल पर वैलनेस सेंटर खुलने से हेल्थ टूरिज्म को नई पहचान मिलेगी।

क्या लीथियम याददाश्त बचाने में मददगार है?

लीथियम धातु का उपयोग फोन और लैपटॉप की बैटरियों में किया जाता है। लेकिन चिकित्सा, खासकर मानसिक स्वास्थ्य सम्बंधी चिकित्सा, में भी लीथियम का उपयोग होता है। इसका उपयोग मूडवर्धक के तौर पर सॉफ्ट ड्रिंक तथा बाइपोलर डिसऑर्डर में मूड स्विंग नियंत्रित करने के लिए किया जाता रहा है। और अब नेचर पत्रिका में प्रकाशित एक हालिया अध्ययन के अनुसार लीथियम याददाश्त और दिमाग की सेहत के लिए भी अहम हो सकता है।

इस अध्ययन में हारवर्ड के न्यूरोसाइंटिस्ट ब्रूस यैंकनर और उनकी टीम ने मृत्यु के पश्चात सैकड़ों बुज़ुर्गों के मस्तिष्क का अध्ययन किया। इनमें से कुछ को अल्ज़ाइमर था, कुछ में हल्की स्मृतिभ्रंश की समस्या थी, और बाकी पूरी तरह स्वस्थ थे। उन्होंने पाया कि अल्ज़ाइमर और मामूली संज्ञानात्मक समस्या वाले लोगों के मस्तिष्क में लीथियम का स्तर स्वस्थ लोगों की तुलना में कम था। और तो और, ऐसे लोगों में जो लीथियम था वह भी ज़्यादातर अल्ज़ाइमर से जुड़े एमिलॉइड प्लाक के बीच फंसा था जिससे दिमाग के सामान्य कार्य के लिए और भी कम लीथियम बचा था।

मस्तिष्क में लीथियम का कम स्तर मिलना सिर्फ पहला कदम था। इसके बाद टीम ने जांचा कि क्या लीथियम का स्तर बढ़ाने से मदद मिल सकती है। उन्होंने लीथियम ओरोटेट नामक यौगिक को उन चूहों पर आज़माया जिन्हें आनुवंशिक रूप से अल्ज़ाइमर जैसे लक्षण विकसित करने के लिए तैयार किया गया था। गौरतलब है कि बाइपोलर डिसऑर्डर की चिकित्सा में लीथियम के एक अन्य लवण लीथियम कार्बोनेट का इस्तेमाल किया जाता है।

उन्होंने पाया कि जिन चूहों को पीने के पानी में थोड़ी मात्रा में लीथियम ओरोटेट दिया गया, उनमें एमिलॉइड प्लाक्स या टाउ नहीं बना। यहां तक कि जिन वृद्ध चूहों की याददाश्त कमज़ोर हो चुकी थी, वे फिर से चीज़ों को पहचानने और भूल-भुलैया में रास्ता ढूंढने लगे। इसमें सबसे अहम बात यह रही कि इतनी कम मात्रा में लीथियम देने से किडनी या थायरॉयड को वह नुकसान नहीं हुआ जो कभी-कभी लीथियम कार्बोनेट से हो जाता है।

दूसरी ओर, जिन चूहों को लीथियम की कमी वाला आहार दिया गया, उनकी याददाश्त कमज़ोर हो गई और उनके मस्तिष्क में और अधिक प्लाक्स बनने लगे।

गौरतलब है कि लीथियम प्राकृतिक रूप से चट्टानों, समुद्री पानी, कुछ सब्ज़ियों (जैसे पत्ता गोभी और टमाटर) और कुछ क्षेत्रों के पीने के पानी में पाया जाता है। फिर भी विशेषज्ञ इस खोज को काफी महत्वपूर्ण मानते हैं और एंटी-एमिलॉइड दवाओं में हालिया प्रगति के बावजूद, इसे एक प्रभावी उपचार के रूप में देखते हैं।

हालांकि ये नतीजे उम्मीद जगाने वाले हैं, लेकिन महज़ इन नतीजों के आधार पर लीथियम सप्लीमेंट न लेने लगें। एक तो अभी यह अध्ययन बस चूहों पर हुआ है, दूसरा डॉक्टर की सलाह के बिना इसे न लें।

धरती पर जीवन का पहला कदम

लगभग 40 करोड़ साल पूर्व सबसे पहले कशेरुकी जीव समुद्र में रहते थे। उस समय मछलियां ही समुद्र की सबसे बड़ी जीव थीं, लेकिन उनमें ज़मीन पर चलने के लिए मज़बूत टांगें विकसित नहीं हुई थीं। वैज्ञानिकों का मानना था कि विकास की प्रक्रिया में काफी समय लगा जिसके बाद मछलियां ज़मीन पर आईं।

लेकिन पोलैंड में हुई एक खोज से पता चला है कि कुछ मछलियों ने हमारी सोच से कहीं पहले ही ज़मीन पर जीने की कोशिश की थी।

2021 में वैज्ञानिकों को पोलैंड स्थित होली क्रॉस पर्वतों में अजीब से जीवाश्म निशान मिले। ये पत्थर कभी समुद्र तट का हिस्सा थे। इनमें 240 से ज़्यादा गड्ढे और खरोंचें मिलीं। जांच से पता चला कि ये निशान शायद मछलियों के ज़मीन या बहुत उथले पानी पर रेंगते हुए बने थे। ये जीवाश्म 41 से 39.3 करोड़ साल पुराने हैं ड्ढ यानी पहले मिले सबूतों से करीब 1 करोड़ साल पहले।

ये निशान आज की लंगफिश से बहुत मिलते-जुलते हैं। लंगफिश ऐसी मछली है जो हवा में सांस ले सकती है और अपने मीनपक्षों (पंखों) का इस्तेमाल करके ज़मीन पर रेंग सकती है। माना जाता है कि लंगफिश थलचर चौपाया जीवों के शुरुआती पूर्वजों की करीबी रिश्तेदार है। चलने के लिए यह मछली अपना मुंह ज़मीन पर टिकाकर लीवर की तरह दबाती है और फिर मीनपक्ष और पूंछ की मदद से शरीर को आगे खींचती है। यही अजीब तरीका पोलैंड में मिले जीवाश्मों के निशानों से मेल खाता है।

अध्ययन के मुख्य लेखक और पोलिश जियोलॉजिकल इंस्टीट्यूट के वैज्ञानिक पिओत्र श्रेक बताते हैं कि ऐसा तभी संभव था जब वे पूरी तरह पानी के उछाल पर निर्भर नहीं रह गई हों।

वैज्ञानिकों की टीम ने इन जीवाश्मों के निशानों को बारीकी से समझने के लिए 3-डी स्कैनिंग की। फिर उन्होंने इनकी तुलना आज की पश्चिम अफ्रीकी लंगफिश द्वारा बनाए गए निशानों से की। नतीजा यह रहा कि नाक, पंख, पूंछ और शरीर के हिस्सों से बने दबाव के निशान लगभग वैसे ही मिले। इससे साफ हुआ कि प्राचीन समय की कुछ मछलियां लंगफिश जैसी ही रही होंगी।

एक और दिलचस्प बात यह सामने आई: वैज्ञानिकों को 'हैंडेडनेस' यानी शरीर के एक ओर की वरीयता के सबूत भी मिले। 240 निशानों में से 36 में सिर झुकाने के संकेत थे, जिनमें से 35 बाईं ओर झुके थे। इसका मतलब यह हो सकता है कि वे मछलियां ज़्यादातर बाईं ओर झुककर चलती थीं, ठीक वैसे ही जैसे इंसानों में कोई दाएं या बाएं हाथ का ज़्यादा इस्तेमाल करता है। यह जानवरों में 'हैंडेडनेस' का अब तक का सबसे पुराना प्रमाण हो सकता है।

अलबत्ता, एक तर्क यह है कि आज की लंगफिश 40 करोड़ साल पुरानी मछलियों से बहुत अलग हैं, इसलिए सीधे-सीधे तुलना मुश्किल है। चीन और

ऑस्ट्रेलिया में मिले ऐसे ही जीवाश्मों पर अधिक शोध इन निष्कर्षों की पुष्टि करने में सहायक हो सकते हैं। बहरहाल, यह खोज हमें याद दिलाती है कि विकास कभी सीधी रेखा में नहीं होता।

संक्रमण सुप्त कैंसर कोशिकाओं को जगा सकते हैं

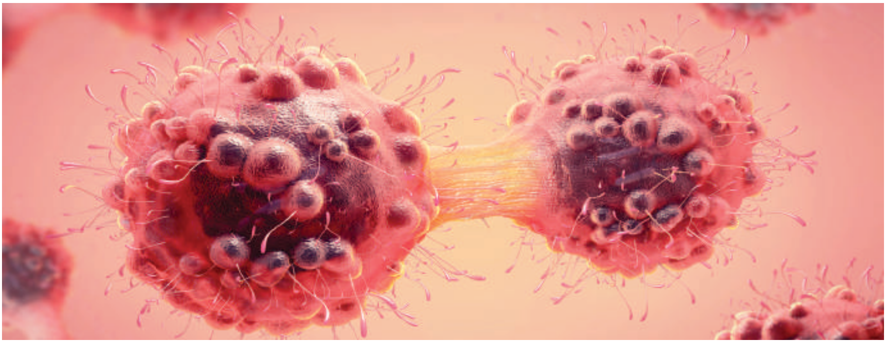

चूहों पर हुए एक अध्ययन के अनुसार कोविड–19 और फ्लू जैसे संक्रमण 'सुप्त' कैंसर कोशिकाओं को सक्रिय कर सकते हैं। नेचर में प्रकाशित अध्ययन के मुताबिक, ऐसे संक्रमण कुछ मरीज़ों में कैंसर से मौत का खतरा लगभग दुगना कर सकते हैं।

दरअसल, कैंसर के इलाज में मुख्य ट्यूमर हटा देने के बाद भी कुछ कैंसर कोशिकाएं अस्थिमज्जा या फेफड़ों जैसी जगहों में छिपी रह सकती हैं। इन्हें सुप्त कैंसर कोशिकाएं कहते हैं, जो सालों तक निष्क्रिय रहती हैं लेकिन मौका मिलने पर मेटास्टेसिस यानी कैंसर फैलने की वजह बन सकती हैं।

लेकिन इनके जागने का कारण क्या है? पूर्व अध्ययनों में पाया गया था कि धूम्रपान, उम्र बढ़ना या कुछ बीमारियों से होने वाला जीर्ण शोथ इसका कारण हो सकते हैं। लेकिन कोलोराडो युनिवर्सिटी स्कूल ऑफ मेडिसिन के जेम्स डीग्रेगरी और उनकी टीम को लगा कि शायद सांस के संक्रमण से होने वाले गंभीर शोथ का भी इसमें हाथ हो सकता है।

इसे परखने के लिए उन्होंने चूहों को इस तरह तैयार किया कि उनमें स्तन कैंसर ट्यूमर बनें और फेफड़ों में सुप्त कैंसर कोशिकाएं मौजूद रहें। फिर इन चूहों को या तो SARS-CoV-2 (कोविड–19 वायरस) या इन्फ्लुएंज़ा (फ्लू) वायरस से संक्रमित किया। नतीजे चौंकाने वाले थे। शोधकर्ताओं ने पाया कि संक्रमण के कुछ ही दिनों में सोई हुई कैंसर कोशिकाएं तेज़ी से बढ़ने लगीं और फेफड़ों में मेटास्टेटिक घाव बनने लगे। ***

दिन बादलों में खो गया

त्रिलोचन

आज का दिन बादलों में खो गया था
दृष्टि में आकर शशक जैसे चपल से चपल होकर
सघन पत्रश्याम वन में खो गया था
वायु भू पर और ऊपर
नवल लहराते हुए घन श्याम सुंदर
कहीं धौरे कहीं कारे
लहर तिल तिल पर सँवारे
मधुर मधुर सजीव गर्जन से
ध्वनित जग हो गया था
पंक हो पथ–अंक में रज–कण मिले कल
आज सूखे मार्ग निर्मल, सतत आग्रहशील आकर
पवन शीतल स्पर्श कर कर
अ ब अ व ज्ञा पात्र
अति परिचय–जनित वह हो गया था
दूर से, मेरे क्षितिज के पार, पश्चिम में कहीं से
सतत वर्षण–शील जलदों को चला कर
मधुर गर्जन–शील कर बिजली जगा कर
पथ–जनित निज शुष्कता
धन–सीकरों के स्पर्श हर
उच्छ्वसित पछुआ हवा तरु, शस्य और सरोवरों को
अनवरत गति की कहानी साँस सी ले कर सुना कर
मधुर संचित स्नेह–सी करती समर्पण मौन अपना
आज मेरे पास आई, आ गया मन
जो स्मरण में प्रिय प्रवासी हो गया था

***

बदलते समय में हिंदी की अविचलता

विभा कनन

भाषा केवल संवाद का साधन नहीं होती, बल्कि वह संस्कृति, पहचान और भावनाओं की अभिव्यक्ति का भी माध्यम है। हिंदी, जो भारत की सबसे अधिक बोली जाने वाली भाषा है, आज तकनीकी युग में एक नई उड़ान भर रही है।

इंटरनेट, मोबाइल, सोशल मीडिया और डिजिटल प्लेटफ़ॉर्म्स ने हिंदी को उस मुकाम तक पहुँचाया है जहाँ वह न केवल भारत में बल्कि पूरी दुनिया में अपनी मजबूत उपस्थिति दर्ज करा रही है। यदि कभी यह कहा जाता था कि तकनीक केवल अंग्रेज़ी की भाषा है, तो आज यह धारणा बदल चुकी है। अब तकनीक हिंदी को अपने साथ लेकर चल रही है और हिंदी तकनीक को जन-जन तक पहुँचाने का माध्यम बन रही है।

इंटरनेट पर पहले अंग्रेज़ी का ही वर्चस्व था लेकिन जैसे-जैसे भारत में इंटरनेट यूज़र्स की संख्या बढ़ी, वैसे-वैसे हिंदी की माँग और उपस्थिति भी बढ़ती गई। रिपोर्ट्स के अनुसार, इंटरनेट पर हिंदी पढ़ने वालों की संख्या अंग्रेज़ी की तुलना में कई गुना तेजी से बढ़ रही है।

गूगल और केपीएमजी की एक रिपोर्ट कहती है कि आने वाले वर्षों में भारत में इंटरनेट पर हिंदी उपयोगकर्ता अंग्रेज़ी उपयोगकर्ताओं से दोगुने हो जाएंगे। आज लगभग हर बड़ी वेबसाइट, ऐप और पोर्टल हिंदी में उपलब्ध है। चाहे ऑनलाइन शॉपिंग हो, बैंकिंग हो या फिर हेल्थ सेवाएँ हिंदी अब हर जगह उपयोग हो रही है।

सोशल मीडिया प्लेटफ़ॉर्म्स ने हिंदी को सबसे बड़ा मंच दिया है। फेसबुक, ट्विटर (अब एक्स), इंस्टाग्राम और

यूट्यूब पर हिंदी कंटेंट की लोकप्रियता अद्भुत है। यूट्यूब पर हिंदी चैनल्स करोड़ों सब्सक्राइबर्स पा रहे हैं। मीम्स, रील्स और शॉर्ट वीडियो में हिंदी सबसे ज्यादा इस्तेमाल की जाने वाली भाषा है।

हिंदी कविताएँ, शायरी और विचार सोशल मीडिया पर वायरल होते हैं। सोशल मीडिया ने यह साबित कर दिया कि हिंदी केवल संवाद की भाषा नहीं, बल्कि भावनाओं और रचनात्मकता की सबसे बड़ी अभिव्यक्ति है।

स्मार्टफोन क्रांति ने हिंदी को आम आदमी तक पहुँचा दिया। अब हिंदी कीबोर्ड्स आसानी से उपलब्ध हैं। गूगल वॉयस टाइपिंग से लोग केवल बोलकर हिंदी लिख सकते हैं। व्हाट्सएप, टेलीग्राम और अन्य चैटिंग ऐप्स पर हिंदी में बातचीत करना आम हो चुका है। आज गाँव–गाँव के लोग मोबाइल से हिंदी में समाचार पढ़ रहे हैं, ऑनलाइन लेन–देन कर रहे हैं और शिक्षा प्राप्त कर रहे हैं। यह सब तकनीक की वजह से संभव हुआ है।

हिंदी पत्रकारिता का इतिहास बहुत पुराना है, लेकिन डिजिटल युग ने इसे नई ऊर्जा दी है। लगभग हर बड़ा समाचार पत्र और न्यूज़ चैनल अब अपनी हिंदी वेबसाइट और मोबाइल ऐप चला रहा है। वेब पोर्टल्स जैसे भास्कर, आजतक, नवभारत टाइम्स, दैनिक जागरण आदि करोड़ों पाठकों तक पहुँच रहे हैं। ग्रामीण क्षेत्रों में लोग अब टीवी या रेडियो पर निर्भर नहीं हैं, बल्कि सीधे मोबाइल से हिंदी में ताज़ा खबरें पढ़ लेते हैं। डिजिटल पत्रकारिता ने हिंदी को राष्ट्रीय ही नहीं, बल्कि वैश्विक स्तर पर भी पहचान दिलाई है।

तकनीकी युग ने शिक्षा के क्षेत्र में क्रांति कर दी है और इसमें हिंदी की भूमिका बेहद अहम है। विभिन्न ऑनलाइन कोर्सेज अब हिंदी में उपलब्ध हैं। सरकारी और निजी प्लेटफ़ॉर्म जैसे स्वयं, दीक्षा, बायजूस, अनअकैडमी आदि हिंदी माध्यम में पढ़ाई की सुविधा दे रहे हैं।

ग्रामीण और छोटे कस्बों के छात्र, जो अंग्रेज़ी की वजह से पीछे रह जाते थे, अब हिंदी माध्यम से भी उच्च गुणवत्ता की शिक्षा पा रहे हैं। इससे शिक्षा का लोकतंत्रीकरण हुआ है और हिंदी ने तकनीक की मदद से करोड़ों छात्रों तक ज्ञान की पहुँच सुनिश्चित की है।

तकनीक ने मनोरंजन जगत को भी बदल दिया है। नेटफ्लिक्स, अमेज़न प्राइम, डिज़्नी+हॉटस्टार जैसे जढढ प्लेटफ़ॉर्म्स पर हिंदी कंटेंट की माँग सबसे अधिक है। हिंदी वेब सीरीज़ और फिल्में केवल भारत में ही नहीं, बल्कि विदेशों में भी देखी जा रही हैं। सबटाइटल्स और डबिंग ने हिंदी कंटेंट को वैश्विक दर्शकों तक पहुँचा दिया है।

बॉलीवुड गीत और हिंदी संगीत यूट्यूब पर सबसे ज्यादा सुने जाते हैं। यह स्पष्ट करता है कि तकनीक और मनोरंजन ने मिलकर हिंदी को विश्व पटल पर स्थापित कर दिया है।

भारत सरकार और विभिन्न राज्य सरकारें हिंदी को तकनीकी मंचों पर प्रोत्साहित कर रही हैं। सरकारी वेबसाइट्स अब हिंदी में भी उपलब्ध हैं। UIDAI, IRCTC, आधार, रेलवे और बैंकिंग सेवाएँ हिंदी में संचालित की जा रही हैं। सरकारी नीतियों ने तकनीक और हिंदी के बीच सेतु का काम किया है।

यद्यपि हिंदी ने डिजिटल दुनिया में बड़ी उपलब्धियाँ हासिल की हैं, फिर भी कुछ चुनौतियाँ मौजूद हैं: तकनीकी शब्दावली अधिकतर अंग्रेज़ी आधारित है। कई ऐप्स और सॉफ़्टवेयर अभी भी पूरी तरह हिंदी समर्थित नहीं हैं। हिंदी में कंटेंट की गुणवत्ता को लेकर कभी–कभी सवाल उठते हैं।

ग्रामीण इलाक़ों में इंटरनेट कनेक्टिविटी की कमी से हिंदी डिजिटल विकास धीमा हो जाता है। इन चुनौतियों का समाधान करना ज़रूरी है ताकि हिंदी वास्तव में तकनीक की मुख्य भाषा बन सके।

भविष्य में हिंदी का तकनीकी संसार और भी विस्तृत होगा। कृत्रिम बुद्धिमत्ता (अख) और मशीन अनुवाद से हिंदी को वैश्विक स्तर पर पहुँचाया जा सकेगा। Chatbots और Virtual Assistants अब हिंदी में बातचीत करने लगे हैं। मेटावर्स, अठ और तठ जैसी तकनीकें भी धीरे–धीरे हिंदी में उपलब्ध होंगी। हिंदी ब्लॉगिंग, व्लॉगिंग और पॉडकास्टिंग आने वाले समय में और भी लोकप्रिय होंगे।

यह कहना गलत नहीं होगा कि आने वाले दशकों में हिंदी न केवल भारत की, बल्कि विश्व की डिजिटल भाषाओं में अग्रणी भूमिका निभाएगी।

तकनीक और इंटरनेट ने हिंदी को एक नई पहचान दी है। आज हिंदी गाँव–गाँव से लेकर महानगरों तक, और भारत से लेकर विदेशों तक अपनी छाप छोड़ रही है।

मोबाइल, सोशल मीडिया, डिजिटल शिक्षा, पत्रकारिता और मनोरंजन – हर क्षेत्र में हिंदी ने अपनी उपस्थिति दर्ज कराई है। आज समय की माँग है कि हम तकनीक का उपयोग कर हिंदी को और अधिक सशक्त बनाएँ।

यदि अंग्रेज़ी तकनीक की भाषा है, तो हिंदी तकनीक की आत्मा बन सकती है। तकनीक ने हिंदी को नई उड़ान दी है और आने वाले समय में हिंदी न केवल भारत की, बल्कि पूरी दुनिया की डिजिटल पहचान बनकर उभरेगी। ***

जरुरी है ऊर्जा के हरित विकल्प

डॉ रामानुज पाठक

आज का मानव समाज ऊर्जा पर अत्यधिक निर्भर है, और यह ऊर्जा मुख्यतः जीवाश्म ईंधनों,जैसे कोयला, पेट्रोलियम और प्राकृतिक गैस से प्राप्त होती है। इन स्रोतों ने औद्योगिक क्रांति से लेकर डिजिटल युग तक मानव विकास को गति प्रदान की है। पिछले दो शताब्दियों में इन ऊर्जा स्रोतों ने विज्ञान, प्रौद्योगिकी, और समाज के विकास की दिशा में अभूतपूर्व परिवर्तन लाए हैं।

वर्तमान युग में यह प्रश्न अत्यंत प्रासंगिक हो उठा है 'कोयले के बाद क्या' यह केवल एक वैज्ञानिक या तकनीकी जिज्ञासा नहीं, बल्कि एक बहुआयामी चुनौती है जिसमें पर्यावरणीय संतुलन, सामाजिक न्याय, आर्थिक पुनर्रचना और वैश्विक सहयोग जैसे तत्व अंतर्निहित हैं। पारंपरिक ऊर्जा स्रोतों की सीमा और उनके पर्यावरणीय प्रभाव अब मानव जाति को यह सोचने पर विवश कर रहे हैं कि अगला कदम क्या हो? क्या हम वैकल्पिक ऊर्जा की ओर गति से बढ़ रहे हैं? क्या सभी वर्गों और देशों के लिए यह संक्रमण न्यायसंगत होगा? यह आलेख इस महत्वपूर्ण प्रश्न का उत्तर देने का प्रयास करेगा।

हम यह जानने की कोशिश करेंगे कि 'कोयले के बाद क्या' और हम उसके लिए कितने तैयार हैं। जीवाश्म ईंधनों की ऐतिहासिक भूमिका पर नजर डालें तो हम देखते हैं कि ,कोयला, कच्चा तेल और प्राकृतिक गैस ने बीते दो शताब्दियों में बिजली उत्पादन, परिवहन और उद्योगों के संचालन की आधारशिला रखी है। विशेषकर उन्नीसवीं सदी में कोयला ऊर्जा क्रांति का प्रमुख स्रोत बना, जिसने भारी उद्योगों और मशीनरी के विकास की दिशा

में महत्वपूर्ण योगदान दिया। यही वह समय था जब दुनिया भर में रेलगाड़ियों और भाप इंजन के उपयोग की शुरुआत हुई, जो वैश्विक व्यापार को तेज करने और औद्योगिक समाज को आकार देने में सहायक बने।

तेल आधारित ईंधनों के बिना विमान, ट्रक, जलपोत आदि का संचालन संभव नहीं होता। वैश्वीकरण की प्रक्रिया, जिसमें माल और मनुष्य का वैश्विक स्तर पर आवागमन होता है, जीवाश्म ईंधनों की ही देन है। समुद्रों और आकाश में वाणिज्यिक मार्गों के विकास ने वैश्विक अर्थव्यवस्था को एक नए युग में प्रवेश कराया, जो केवल जीवाश्म ईंधनों की उपलब्धता और उत्पादन पर निर्भर था।

आधुनिक कृषि प्रणाली में ट्रैक्टर, पंप, उर्वरक निर्माण आदि के लिए जीवाश्म ईंधनों का व्यापक उपयोग होता है। इसके बिना खाद्य उत्पादन की वर्तमान दर बनाए रखना संभव नहीं। इसके अलावा, खाद्य प्रसंस्करण और परिवहन के लिए भी जीवाश्म ईंधनों पर निर्भरता है, जिससे कृषि उत्पादों को बाजारों में पहुंचाना और खाद्य सुरक्षा सुनिश्चित करना संभव हो पाया है। जीवाश्म ईंधनों की सीमाएँ और संकट भी अनेक हैं।

संयुक्त राष्ट्र की जलवायु परिवर्तन पर अंतरसरकारी समिति (इंटरगवर्नमेंटल पैनल ऑन क्लाइमेट चेंज – आई पी सी सी) की रपट के अनुसार, यदि ग्रीनहाउस गैसों के उत्सर्जन पर रोक नहीं लगी, तो पृथ्वी का औसत तापमान इस सदी के अंत तक 2 डिग्री सेल्सियस से अधिक बढ़ सकता है। यह समुद्र–स्तर में वृद्धि, सूखा, बाढ़, चक्रवात तथा खाद्य संकट उत्पन्न कर सकता है। जलवायु परिवर्तन के कारण आने वाले प्राकृतिक आपदाओं की स्थिति पूरी दुनिया के लिए एक गंभीर चुनौती बन सकती है, जिसका सामना गरीब और विकासशील देशों को ज्यादा करना होगा।

विश्व स्वास्थ्य संगठन (डब्लू एच ओ) के अनुसार, वायु प्रदूषण के कारण प्रतिवर्ष लगभग 70 लाख से अधिक लोगों की असामयिक मृत्यु होती है। कोयले और डीज़ल जैसे ईंधनों के दहन से उत्पन्न सूक्ष्म कण (पार्टीकुलेट मैटर– पी एम) फेफड़ों और हृदय को गंभीर क्षति पहुँचाते हैं। इसके परिणामस्वरूप अस्थमा, कैंसर, और अन्य गंभीर श्वसन और हृदय रोगों में वृद्धि हो रही है, जो मानव जीवन के लिए अभूतपूर्व खतरे की ओर इशारा करते हैं।

तेल और गैस संसाधनों के नियंत्रण हेतु कई बार युद्ध और अंतरराष्ट्रीय तनाव उत्पन्न होते हैं। ऊर्जा स्रोतों पर निर्भरता आर्थिक अस्थिरता का कारण भी

बनती है, विशेषकर ऊर्जा आयातक देशों के लिए। हाल के वर्षों में, ऊर्जा की बढ़ती कीमतें और आपूर्ति में असंतुलन ने वैश्विक आर्थिक संकट को जन्म दिया है, जिससे विकासशील देशों की अर्थव्यवस्था और भी कमजोर हो रही है।

कोयला के विकल्पों की खोज अनादिकाल से हैं। सूर्य से प्राप्त ऊर्जा अक्षय (नवीकरणीय) एवं प्रदूषण रहित होती है। सौर पैनलों की लागत में निरंतर गिरावट और उनकी क्षमता में वृद्धि के कारण अब इसे गाँवों से लेकर नगरों तक उपयोग में लाया जा रहा है। सौर ऊर्जा न केवल पर्यावरण को बचाती है, बल्कि यह बिजली की लागत को भी कम करती है। सौर ऊर्जा का उपयोग कृषि, पानी की आपूर्ति, और घरों में भी किया जा सकता है।

भूमि और समुद्री दोनों क्षेत्रों में पवन टर्बाइनों की स्थापना की जा रही है। विकसित देशों के साथ अब भारत भी पवन ऊर्जा के दोहन में अग्रणी बनता जा रहा है। पवन ऊर्जा की संभावना न केवल ग्रामीण क्षेत्रों में, बल्कि तटीय क्षेत्रों में भी व्यापक रूप से पाई जाती है।

पवन टर्बाइन तकनीक की प्रगति के साथ, यह ऊर्जा स्त्रोत अब पूरी दुनिया में तेजी से विस्तार कर रहा है। बाँधों और जल प्रवाह से उत्पन्न ऊर्जा पारंपरिक होते हुए भी दीर्घकालिक समाधान हो सकती है, यदि उसका उपयोग पारिस्थितिक संतुलन के साथ किया जाए। जलविद्युत ऊर्जा का महत्व तब और बढ़ जाता है जब यह मौसम और जलवायु परिवर्तन से प्रभावित नहीं होती है, और यह स्थिर ऊर्जा आपूर्ति प्रदान करती है।

नवीकरणीय स्त्रोतों की अनियमित आपूर्ति के कारण ऊर्जा को संग्रहित करने की तकनीक जैसे लिथियम-आयन बैटरी आवश्यक हो गई है। टेस्ला सीएटीएल जैसी कंपनियाँ इस क्षेत्र में अग्रणी हैं। ऊर्जा भंडारण का विकास हमें यह सुनिश्चित करने की क्षमता देता है कि जब सूर्य या पवन की शक्ति उपलब्ध नहीं हो, तो भी ऊर्जा की आपूर्ति जारी रहे।

हरित हाइड्रोजन वह ईंधन है जो जल को विद्युत अपघटन (इलैक्ट्रोलिसिस) द्वारा तोड़कर प्राप्त किया जाता है, और यदि इसमें प्रयुक्त बिजली नवीकरणीय स्त्रोतों से ली गई हो, तो यह पूरी तरह स्वच्छ ऊर्जा बन जाती है। हरित हाइड्रोजन को परिवहन और भारी उद्योगों में उपयोग करने के लिए एक संभावित भविष्य के ईंधन के रूप में देखा जा रहा है।आज हाइड्रोजन ईंधन से रेलगाड़ियों तक का परिचालन सफलता पूर्वक संपन्न किया जा चुका है।

विश्व के अनेक विकासशील राष्ट्र अब भी ऊर्जा की बुनियादी आवश्यकताओं से वंचित हैं। यदि वैश्विक ऊर्जा संक्रमण में

इन्हें तकनीकी, वित्तीय और संस्थागत सहायता न दी गई, तो यह जलवायु अन्याय (क्लाइमेट इंजस्टिस) का रूप ले सकता है। जलवायु परिवर्तन और ऊर्जा संकट के समाधान के लिए विकासशील देशों को वैश्विक सहायता की आवश्यकता है, ताकि वे भी इस परिवर्तन के हिस्सेदार बन सकें।

कोयला खनन, बिजली संयंत्र और उससे जुड़े लाखों श्रमिकों की आजीविका को सुरक्षित रखने के लिए वैकल्पिक प्रशिक्षण, नई नौकरियाँ और सामाजिक सुरक्षा की व्यवस्था आवश्यक है। इससे न केवल श्रमिकों की आजीविका सुरक्षित रहेगी, बल्कि यह समग्र रूप से न्यायपूर्ण और सामूहिक प्रयास के रूप में परिवर्तित होगा।

ग्राम स्तर पर सौर माइक्रोग्रिड, बायोगैस संयंत्र, और समुदाय–आधारित ऊर्जा सहकारी समितियाँ आत्मनिर्भर ऊर्जा आपूर्ति का आधार बन सकती हैं। इससे विकेंद्रीकरण, स्वावलंबन और पर्यावरणीय जागरूकता को बल मिलेगा।

ऊर्जा संकट का समाधान केवल तकनीकी विकास से नहीं होगा, जब तक उपभोग की असंतुलित प्रवृत्ति पर अंकुश न लगाया जाए। 'कम उपभोग, अधिक स्थिरता' (लेस कंजंप्शन, मोर सस्टेनेबिलिटी) का सिद्धांत अपनाना होगा। शिक्षा, मीडिया और सामाजिक संवाद के माध्यम से ऊर्जा के विवेकपूर्ण उपयोग को संस्कृति का हिस्सा बनाना होगा। जीवनशैली में संयम, संसाधनों का न्यायपूर्ण वितरण और सतत विकास की भावना ही भावी पीढ़ियों को ऊर्जा संपन्न एवं स्वस्थ भविष्य दे सकती है।

भविष्य की ऊर्जा संरचना पर ध्यान केंद्रित करना ही होगा।अक्षय ऊर्जा का मिश्रण एक बेहतर विकल्प है। सौर, पवन, जल, भू–तापीय और जैव ऊर्जा को संतुलित रूप में अपनाना होगा। इन सभी ऊर्जा स्त्रोतों का संयोजन न केवल ऊर्जा आपूर्ति को स्थिर बनाए रखेगा, बल्कि यह पर्यावरण के लिए भी अधिक सुरक्षित होगा।

कृत्रिम बुद्धिमत्ता ,इंटरनेट ऑफ थिंग्स , और स्मार्ट ग्रिड जैसी तकनीकों का उपयोग ऊर्जा प्रबंधन में क्रांति ला सकता है। इन तकनीकों के माध्यम से ऊर्जा के वितरण और उपयोग को अधिक कुशल और वैकल्पिक रूप से संगठित किया जा सकता है।

संयुक्त राष्ट्र के सतत विकास लक्ष्य में ऊर्जा को विशेष स्थान दिया गया है। विशेष रूप से लक्ष्य संख्या 7 सभी के लिए सस्ती, विश्वसनीय, टिकाऊ और आधुनिक ऊर्जा का पालन अनिवार्य है। यह सुनिश्चित करना कि सभी लोगों को

समान और पर्याप्त ऊर्जा आपूर्ति मिले, ऊर्जा न्याय के प्रमुख स्तंभों में से एक है।

'कोयले के बाद क्या' यह प्रश्न केवल एक संसाधन के विकल्प का नहीं, बल्कि हमारी जीवनशैली, उत्पादन प्रणाली, सामाजिक न्याय और वैश्विक सहयोग की नई दिशा का संकेतक है। आज ऊर्जा संकट और जलवायु परिवर्तन ने यह स्पष्ट कर दिया है कि अब और देर करना आत्मघाती होगा।

विज्ञान हमें विकल्प दे रहा है, तकनीकें उपलब्ध हैं, परंतु उनकी सफलता समाज की मानसिकता, नीति निर्माण की दूरदर्शिता और वैश्विक सहयोग की भावना पर निर्भर करती है। हमें न केवल अक्षय ऊर्जा को अपनाना है, बल्कि ऐसी जीवनशैली भी विकसित करनी है जो प्रकृति के साथ सहअस्तित्व को महत्व देती हो। यह संक्रमण केवल सरकारों या कंपनियों की जिम्मेदारी नहीं है; हर व्यक्ति, हर संस्था और हर समुदाय को इसमें भागीदारी निभानी होगी।

यदि हम ऊर्जा को केवल संसाधन नहीं, बल्कि मानवाधिकार और न्याय का विषय मानें, तो एक ऐसा भविष्य संभव है जहाँ ऊर्जा सुलभ, सतत और समावेशी हो। कोयले के बाद की दुनिया एक अवसर है अधिक हरित, अधिक न्यायसंगत और अधिक मानवोचित भविष्य की दिशा में अग्रसर होने का। ***

वंतारा की जांच होगी, एसआईटी गठित

सुप्रीम कोर्ट ने रिलायंस फाउंडेशन के वंतारा ग्रीन्स जूलॉजिकल रेस्क्यू एंड रिहैबिलिटेशन सेंटर, जामनगर (गुजरात) के खिलाफ लगे आरोपों की जांच के लिए एसआईटी गठित की है। जस्टिस पंकज मित्तल और जस्टिस प्रसन्ना बी वराले की बेंच ने इसके लिए सुप्रीम कोर्ट के रिटायर्ड जज जस्टिस जे चेलमेश्वर की अध्यक्षता में एसआईटी गठित करने का आदेश दिया है। यह आदेश वंतारा पर जानवरों की अवैध खरीद, उनसे दुर्व्यवहार, वित्तीय अनियमितता और मनी लॉन्ड्रिंग के आरोपों को लेकर दायर याचिकाओं पर दिया गया।

सुप्रीम कोर्ट ने निर्देश दिया है कि सेंट्रल ज़ू अथॉरिटी, सीआईटीईएस मैनेजमेंट अथॉरिटी, पर्यावरण मंत्रालय और गुजरात सरकार जांच में एसआईटी को सहयोग करें। कोर्ट ने कहा, एसआईटी केवल तथ्य की जांच करेगी। यह आदेश किसी भी पक्ष के खिलाफ पूर्वाग्रह नहीं दर्शाता। रिपोर्ट आने के बाद सुप्रीम कोर्ट आगे की कार्रवाई तय करेगा।

भारत में हर तीसरी मौत की वजह दिल की बीमारी

भारत में दिल की बीमारियां अब भी मौत की सबसे बड़ी वजह बनी हुई हैं। रजिस्ट्रार जनरल ऑफ इंडिया के
सैंपल रजिस्ट्रेशन सर्वे की ताजा रिपोर्ट के मुताबिक, 2021 से 2023 के बीच देश में हुई कुल मौतों में से 31% मौतें कार्डियोवैस्कुलर डिजीज यानी दिल की बीमारियों से हुई।

रिपोर्ट के अनुसार, देश में गैर संक्रामक रोग (जैसे- दिल की बीमारी, कैंसर, डायबिटीज आदि) मौत की सबसे बड़ी वजह हैं। इनसे कुल 56.7% मौतें हुईं। वहीं, संक्रामक, मातृ, नवजात और पोषण संबंधी बीमारियों से 23.4% मौतें दर्ज की गईं। कोविड प्रभावित 2020-2022 के दौरान ये आंकड़े क्रमशः 55.7% और 24% थे।

रिपोर्ट के अनुसार, 30 साल से ऊपर की उम्र के लोगों में दिल की बीमारी मौत की सबसे आम वजह है। वहीं, 15 से 29 साल की उम्र के युवाओं में आत्महत्या सबसे ज्यादा मौतों का कारण बनी। इसके अलावा, सांस से जुड़े संक्रमण से 9.3% और पाचन तंत्र की बीमारियों से 5.3% लोगों की मृत्यु हुई। वहीं अज्ञात स्रोतों से होने वाले बुखार की हिस्सेदारी 4.9% रही। सड़क हादसों को छोड़कर अन्य दुर्घटनाओं ने 3.7% मौतों में योगदान दिया।

पानी, हवा और मिट्टी का प्रदूषण चुपचाप हमारे दिल को खतरे में डाल रहा है। भारी धातुएं और कीटनाशक हमारी सोच से ज्यादा खतरनाक हैं। शोधकर्ताओं ने कहा है कि इन पदार्थों का जितना सोचा गया था उससे से कहीं ज्यादा खतरनाक प्रभाव हो सकते हैं, जिससे हृदय संबंधी बीमारियों में भारी वृद्धि हो सकती है।

प्लास्टिक से बनेगा डीजल, शिवपुरी में लगेगा प्लांट

कचरे में मौजूद प्लास्टिक से पायरोलिसिस प्रक्रिया को अपनाकर डीजल बनाने का प्लांट शहर में लगाया जाएगा। यह मध्यप्रदेश का पहला ऐसा प्लांट होगा, जहां प्लास्टिक से डीजल बनेगा। टेंडर रविवार को खुलेंगे।

सबकुछ सही रहा तो 3–4 माह में प्लांट शुरू हो जाएगा। अभी तक देश में इस तरह के 3–4 प्लांट हैं। ऐसा ही प्लांट उत्तरप्रदेश के मथुरा में है। शिवपुरी का प्लांट पीपीई मोड पर होगा। नगर पालिका के बड़ौदी स्थित ट्रेंचिंग गाउंड में फर्म को जमीन उपलब्ध कराई जाएगी। कंपनी को कम से कम 15 साल के लिए प्लांट चलाने की शर्त होगी। प्लांट लगाने में 3–4 करोड़ खर्च होंगे। कंपनी अपना लाभ निकालने के साथ ही नगर पालिका को भी तय रकम हर माह या सालाना देगी। इस डीजल का प्रयोग वाहनों में कम, बल्कि जनरेटर और हैवी मशीनरी को चलाने में ज्यादा किया जाता है।

प्लास्टिक कचरे को रियक्टर में 350 से 450 डिग्री सेल्सियस तापमान पर गर्म किया जाता है। इसमें हाइड्रो कार्बन बनते हैं। इससे पेट्रोल, डीजल व कार्बन गैस का उत्पादन होता है। एक टन प्लास्टिक कचरे से 150 से 200 लीटर डीजल बन सकता है।

मेट्रो अटलांटा के 21 वर्षीय अश्वेत आविष्कारक जूलियन ब्राउन ने प्लास्टोलाइन नामक तकनीक विकसित की है, जो माइक्रोवेब पायरोलिसिस का उपयोग कर सौर ऊर्जा से चलने वाला रिएक्टर है। यह प्लास्टिक कचरे को गैसोलीन, डीजल व जेट ईंधन जैसे ईंधन में परिवर्तित करता है।

प्लास्टिक से पेट्रोल बनाने के लिए दो तरीके हैं :

ऊष्मीय विघटन : इस विधि में, प्लास्टिक को एक भट्ठी में उच्च तापमान पर गर्म किया जाता है।

जैवसंश्लेषण: इस विधि में, प्लास्टिक को सूक्ष्मजीवों द्वारा जैवसंश्लेषित किया जाता है। ***

लोक चेतना अभियान

सूखी धरती करे पुकार
हरियाली से करो श्रृंगार

पेड़ हैं तो वन है, वन हैं तो बरसात है,
बरसात है तो जल है, जल है तो जीवन है!

एक पर्यावरण प्रेमी मित्र के सौजन्य से जारी

डाक पंजीयन क्रं. RTM DN 122 MP 2024–26

पर्यावरण डाइजेस्ट **सितम्बर 2025** RNI पंजीयन क्रं. 47679/87